पद्यानुवाद सरोवर

(हिन्दी पद्यानुवाद)

(प्रथम पुष्प)

परिवर्धित संस्करण

पद्यानुवादक एवं सम्पादक
पण्डित अभयकुमार जैन
(जैनदर्शनाचार्य, एम.कॉम.)
देवलाली, नासिक (महा.)

प्रकाशक
सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट, जयपुर

कृति : पद्यानुवाद सरोवर (संवर्धित प्रथम पुष्प)
प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियाँ
प्रकाशन तिथि : 1 जनवरी, 2017
सहयोग राशि : 40/- (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्राप्ति स्थान :

- **तीर्थधाम सिद्धायतन**
  श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दि. जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
  मु. पो. द्रोणगिरि, तहसील - बड़ा मलहरा
  जिला - छतरपुर, म. प्र. +91 99776 14254

- **सर्वोदय अहिंसा**
  बी. 180 ए. 2 मंगल मार्ग
  बापू नगर, जयपुर-15 +91 9785 999 100

प्रस्तुत प्रकाशन हेतु प्राप्त सहयोग

25000/- श्री अनिलकुमार जैन, दिल्ली
21000/- श्री विनोदकुमार जैन, जयपुर
15000/- श्रीमती जीजीबाईजी, छिंदवाड़ा
10000/- श्रीमती रोली-ज्ञायक जैन, मुम्बई
2100/- श्री प्रेमचन्दजी जैन, खैरागढ़

पुस्तक के पुनः प्रकाशन में सहयोग के लिए एवं पुस्तक की PDF Copy मँगाने के लिए 95092 32733 पर सम्पर्क करें।

मुद्रण व्यवस्था : प्री एलविल सन (संजय शास्त्री), जयपुर फोन : + 91 95092 32733

प्रकाशकीय

तीर्थंकरों, आचार्यों एवं ज्ञानी विद्वानों की परम्परा में आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी कृत सहज आध्यात्मिक क्रान्ति में जन्मे और बढ़े पण्डित अभयकुमारजी की काव्य-कला से उत्पन्न पद्यानुवादों का संग्रह प्रकाशित करते हुए हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं।

पण्डित अभयकुमारजी द्रव्यानुयोग के गहन अध्येता एवं लोकप्रिय वक्ता होने के साथ-साथ सिद्धहस्त कवि भी हैं। उन्हें सोलह वर्ष की अल्प वय में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं उनके निकटवर्ती विद्वद्वर्य श्री रामजी भाई, खीमचन्द भाई, युगलजी तथा बाबूभाई आदि विद्वानों के समागम का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ है। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निकट रहकर जैन-दर्शन के तलस्पर्शी अध्ययन का अवसर भी उन्हें 1977 से उपलब्ध हुआ है। इसी के फलस्वरूप उन्होंने अपना समग्र जीवन प्रवचन-लेखन आदि के माध्यम से शासन-प्रभावना में समर्पित किया है। यह पूज्य गुरुदेवश्री से प्राप्त तत्त्वज्ञान का ही प्रताप है कि उन्होंने ऐसे गंभीर ग्रंथों का पद्यानुवाद सरल भाषा में प्रस्तुत किया।

सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट ने प्राचीन आचार्यों/विद्वानों के अनेक अनुपलब्धप्राय ग्रन्थों को कम्प्यूटराइज्ड करके उनके प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही **सर्वोदय अहिंसा अभियान** के माध्यम से अहिंसा-शाकाहार के प्रचार के क्षेत्र में भी अपूर्व कर रहा है। गत वर्ष से बालकों/युवाओं के लिए नवीन त्रैमासिक पूर्णतः रंगीन पत्रिका 'जैनस्टर्स' का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया गया है।

सभी स्वाध्याय सभाओं में प्रवचन के पूर्व 15-20 मिनट या सप्ताह में एक घंटे इन पद्यानुवादों के सामूहिक पाठ द्वारा इनका भरपूर लाभ उठाया जा सकता है। आशा है प्रवचनकार बन्धुओं का ध्यान इस ओर अवश्य जायेगा। सभी आत्मार्थी जन इस कृति के माध्यम से ग्रन्थों आद्योपान्त पाठ करके उनका मर्म समझने हेतु प्रयत्नशील हों - यही कामना है। हम इस संकलन में समाविष्ट मूल रचनाकार आचार्यों एवं विद्वानों के प्रति परोक्ष रूप से हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं तथा पण्डित अभयकुमारजी को भी धन्यवाद देते हैं। प्रस्तुत कृति के प्रकाशन में सहयोग देने वाले साधर्मी भाइयों के प्रति हम कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

समस्त ट्रस्टीगण
सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट, जयपुर

अहो भाग्य

अहो भाग्य! जागा जीवन का, मिली जिनागम की छाया।
गुरु-कहान का मिला समागम, चिदानन्द रस मन भाया।
किंचित् काव्य कला उर जागी, तो पद्यानुवाद सुपुष्प।
खिलने लगे ज्ञान-सरवर में, होवें विषय-वासना नष्ट।।

महान पुण्योदय से मनुष्य पर्याय एवं सर्वोत्तम जैन कुल मिला, जिसमें बालवय में ही पूज्य गुरुदेवश्री के समागम ने जीवन-स्वर्ण को सुगन्धित कर दिया। पूज्य माताश्री की प्रेरणा से जिनागम के अभ्यास का प्रयास प्रारम्भ हुआ और तीर्थधाम स्वर्णपुरी के सुयोग से स्वाध्याय गतिशील और व्यवस्थित होता गया।

पर्यायों के सहज प्रवाह क्रम में लौकिक शिक्षा के उपरान्त श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर में शास्त्री एवं जैनदर्शनाचार्य का अभ्यास एवं महाविद्यालय में ही शिक्षण कार्य के मंगल प्रसंग बनते गये, साथ ही काव्यकला में अध्यात्म रस घुलकर भक्ति-प्रसूनों को जन्म देने लगा।

इसी शृंखला में सन् 1998 में छिन्दवाड़ा प्रवास की प्रारम्भिक बेला में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के अनुरोध से आचार्य गुणभद्र विरचित आत्मानुशासन की टीका का आधुनिक हिन्दी में अनुवाद कार्य प्रारम्भ किया। अनुवाद करते समय विचार आया कि मूल ग्रन्थ के छन्दों का गद्यार्थ तो उपलब्ध है ही, क्यों न उसे आधार बनाकर पद्यानुवाद का प्रयास किया जाए, अत: सहज ही यह प्रयास प्रारम्भ हो गया और जिनवाणी माता की असीम कृपा से सफलता भी मिलती गई।

अब अनेक साथी विद्वानों के भी अनुरोध आने लगे कि आप अमुक ग्रन्थ का भी पद्यानुवाद कर दें। अत: डॉ. उत्तमचन्दजी छिंदवाड़ा, ब्र. सन्ध्याबेन, डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर, श्री पवनजी अलीगढ़, श्री देवेन्द्रजी बिजौलिया आदि साधर्मियों के अनुरोध से अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद का अवसर मिला। इस कार्य में अब इतना रस आने लगा कि इसने एक व्यसन का रूप ले लिया है।

अब तक 22 कृतियों का पद्यानुवाद सम्पन्न हो चुका है, जिसे अनेक संस्थाओं द्वारा मूल ग्रन्थों के साथ प्रकाशित किया गया है। धीरे-धीरे मुमुक्षु समाज में इनका पाठ करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और इनका संकलन प्रकाशित करने की माँग भी बढ़ रही है। एतदर्थ यह प्रथम पुष्प आपके कर-कमलों में प्रस्तुत है। इसमें प्रकाशित अनुवादों की झलक मुखपृष्ठ पर दी गई है।

इससे पूर्व मई 2015 में इस कृति का लघु संस्करण प्रकाशित किया गया था, परन्तु एक संकलन में ही अधिकतम ग्रन्थों के पद्यानुवाद समाविष्ट हो सकें – इस भावना से यह परिवर्धित संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें तीन लघु रचनाओं के अनुवाद एवं ग्यारह ग्रन्थों के पद्यानुवाद सहित छह स्वरचित रचनाएँ भी संकलित की गई हैं। द्वितीय खण्ड में भगवती आराधना, पद्मनंदी पंचविंशतिका, समयसार कलश, नियमसार कलश आदि बड़े ग्रन्थों के पद्यानुवाद का संकलन प्रकाशित करने की भावना है।

अनुवाद करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि ग्रन्थ का मूल भाव स्खलित न हो जाये; अतः मूलानुगामी अनुवाद करने का प्रयास किया गया है, जिससे कहीं-कहीं काव्य के प्रमुख गुण 'अनुप्रास' का तिरोभाव भी हो गया है। आशा है, जिनागम के रसिक विद्वज्जन मेरी भावना को समझते हुए क्षमा प्रदान करेंगे तथा यदि कहीं कोई भूल रह गई हो तो मेरा ध्यान आकर्षित करने का कष्ट अवश्य करेंगे।

पंच परमेष्ठी भगवन्तों एवं पूज्य गुरुदेवश्री के उपकारों का स्मरण करते हुए सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी प्रेरणा से यह अनुवाद सम्पन्न एवं प्रकाशित हो रहे हैं। यह अनुवाद शृंखला सभी अध्यात्मरसिक जनों को काव्यरस में जिनागम के सिद्धान्तों को घोलकर हृदयंगम करने में समर्थ हो – इसी पवित्र भावना से विराम लेता हूँ।

– अभयकुमार जैन

अनुक्रमणिका

मंगलाचरण

(वीरछन्द)

श्री अरहन्त सदा मंगलमय, मुक्तिमार्ग का करें प्रकाश।
मंगलमय श्री सिद्ध प्रभू जो, निजस्वरूप में करें विलास।
शुद्धातम के मंगल साधक, साधु पुरुष की सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो।।

मंगलमय चैतन्य स्वरों में, परिणति की मंगलमय लय हो।
पुण्य-पाप की दुखमय ज्वाला, निज आश्रय से शीघ्र विलय हो।
देव-शास्त्र-गुरु को वन्दन कर, मुक्तिवधू का त्वरित वरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो।।

मंगलमय पाँचों कल्याणक मंगलमय जिनका जीवन है।
मंगलमय वाणी सुखकारी शाश्वत सुख की भव्य सदन है।
मंगलमय सत्धर्म तीर्थ-कर्ता की मुझको सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो।।

सम्यग्दर्शन ज्ञान-चरणमय मुक्ति-मार्ग मंगलदायक है।
सर्व पापमल का क्षय करके, शाश्वत सुख का उत्पादक है।
मंगल गुण-पर्यायमयी चैतन्यराज की सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो।।

*****

दृष्टाष्टक स्तोत्र

(हरिगीतिका)

दर्शन किये जिनभवन के भव-ताप नाशक जो अहो!
जिसको अपरिचित विभव की उत्पत्ति का कारण कहो।।
जिसका शिखर है दुग्ध या दधिफेन[1] सम उज्ज्वल धवल।
जिसके कंगूरों में लगीं ध्वज-पंक्तियाँ शोभित विमल।।1।।

दर्शन किये जिनभवन के त्रय लोक श्री[2] जिनमें बसे।
जो निरन्तर ऋद्धिधारी मुनिगणों से सेव्य है।।
विद्याधरों अरु सुरगणों की नारियों से बिखरती-
दिव्य पुष्पांजली से शोभित हुई जिसकी मही।।2।।

दर्शन किये जिनभवन के जो देवियों के गीत से -
गूँजता है, और जिसके अति विशाल गवाक्ष हैं -
जिनमें अनेक प्रकार मणियों की चमकती कांति भी-
चहुँ ओर फैली है अहो! जिसको नमन करते सभी।।3।।

दर्शन किये जिनभवन के भूतल जहाँ अरु दश दिशा।
देव किन्नर यक्ष अरु गंधर्व ने कर में लिया -
वेणु निर्मित वाद्य के संगीत की ध्वनि मधुर से।
गूँजता चहुँ ओर जब वे नमन करते भक्ति से।।4।।

दर्शन किये जिनभवन के जहँ पुष्पमाला डोलती।
गुंजार करते भ्रमर-से अलकावली[3] जहँ शोभती।।
मधुर ध्वनि अरु वाद्य-लययुत नाचती वारांगना -
के वलय-नूपुर-नाद से रमणीय भासित हो रहा।।5।।

1. समुद्र के फेन के समान 2. लक्ष्मी 3. बेलों की पंक्तियाँ।

दर्शन किये जिनभवन के जहँ कलश शत अरु आठ हैं।
जो स्वर्णमय, मणिरत्न निर्मित, गूँजते शुभ पाठ हैं।।
चामरादिक अष्ट मंगल-द्रव्य से शोभित हुआ-
वह भवन निर्मल मोतियों के हार से भूषित हुआ।।6।।

दर्शन किये जिनभवन के जिसके शिखर उत्तुंग में।
कर्पूर चन्दन आदि सुरभित द्रव्य निर्मित धूप के -
धूम्र से मानो घटायें मेघ की आकाश में।
फहरा रही हैं पताकायें वायु के आघात से।।7।।

दर्शन किये जिनभवन के जहँ यक्ष गण अति नम्र हैं।
वे धवल आतप-पत्र की मंगलमयी छाया गहें।।
सुन्दर मनोहर श्वेत चामर-पंक्तियाँ वे ढोरते।
भामण्डलों की दीप्ति से जिनबिम्ब जिनमें शोभते।।8।।

दर्शन किये जिनभवन के जिसकी धरा अति शोभती।
वह रत्नपृथ्वी विविध सुमन सु-माल से मन-मोहती।।
तिलक-तरु सम शोभता जो मंगलोत्तम शरण है।
जो चन्द्र-सम सब मुनिवरों से नित्य वंदन योग्य है।।9।।

दर्शन किये जिनभवन के उत्तुंग सिंहासन जहाँ।
वह कनकमय मणिजड़ित अरु जिनबिम्ब से शोभित हुआ।।
जो नित्य निरुपम कीर्ति गुंजित मुझे मंगल रूप है।
जो सकलचन्द्र मुनीन्द्र द्वारा नित्य वंदन योग्य है।।10।।

*****

चौबीस तीर्थंकर स्तवन

जो अनादि से व्यक्त नहीं था त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भाव।
वह युगादि में किया प्रकाशित वन्दन **ऋषभ** जिनेश्वर राव।।1।।
जिसने जीत लिया त्रिभुवन को मोह शत्रु वह प्रबल महान।
उसे जीतकर शिवपद पाया वन्दन **अजितनाथ** भगवान।।2।।
काललब्धि बिन सदा असम्भव निज सन्मुखता का पुरुषार्थ।
संभव जिनवर ने स्वकाल में प्रकट किया सम्यक् पुरुषार्थ।।3।।
त्रिभुवन जिनके चरणों का अभिनन्दन करता तीनों काल।
वे स्वभाव का **अभिनन्दन** कर पहुँचे शिवपुर में तत्काल।।4।।
निज आश्रय से ही सुख होता यही सुमति जिन बतलाते।
सुमतिनाथ प्रभु की पूजन कर भव्य जीव शिवसुख पाते।।5।।
पद्मप्रभ के पद-पंकज की सौरभ से सुरभित त्रिभुवन।
गुण अनन्त के सुमनों से शोभित श्री जिनवर का उपवन।।6।।
श्री **सुपार्श्व** के शुभ सु-पार्श्व में जिनकी परिणति करे विराम।
वे पाते हैं गुण अनन्त से भूषित सिद्ध सदन अभिराम।।7।।
चारु चन्द्र-सम सदा सुशीतल चेतन **चन्द्रप्रभ** जिनराज।
गुण अनन्त की कला विभूषित प्रभु ने पाया निजपद राज।।8।।
पुष्पदन्त-सम गुण आवलि से सदा सुशोभित हैं भगवान।
मोक्षमार्ग की सुविधि बताकर भविजन का करते कल्याण।।9।।
चन्द्र-किरण सम **शीतल** वचनों से हरते जग का आताप।
स्याद्वादमय दिव्यध्वनि से मोक्षमार्ग बतलाते आप।।10।।
त्रिभुवन के श्रेयस्कर हैं **श्रेयांसनाथ** जिनवर गुणखान।
निज स्वभाव ही परम श्रेय का केन्द्र बिन्दु कहते भगवान।।11।।
शत इन्द्रों से पूजित जग में **वासुपूज्य** जिनराज महान।
स्वाश्रित परिणति द्वारा पूजित पंचम भाव गुणों की खान।।12।।

निर्मल भावों से भूषित हैं जिनवर **विमलनाथ** भगवान।
राग-द्वेष मल का क्षय करके पाया सौख्य अनन्त महान।।13।।
गुण अनन्तपति की महिमा से मोहित है यह त्रिभुवन आज।
जिन **अनन्त** को वन्दन करके पाऊँ शिवपुर का साम्राज्य।।14।।
वस्तु-स्वभाव धर्मधारक हैं धर्म धुरन्धर नाथ महान।
ध्रुव की धुनमय धर्म प्रकट कर वन्दित **धर्मनाथ** भगवान।।15।।
रागरूप अंगारों द्वारा दहक रहा जग का परिणाम।
किन्तु शान्तिमय निजपरिणति से शोभित **शान्तिनाथ** भगवान।।16।।
कुन्थु आदि जीवों की भी रक्षा का जो देते उपदेश।
स्व-चतुष्टय में सदा सुरक्षित **कुन्थुनाथ** जिनवर परमेश।।17।।
पंचेन्द्रिय विषयों से सुख की अभिलाषा है जिनकी अस्त।
धन्य-धन्य **अरनाथ** जिनेश्वर राग-द्वेष अरि किए परास्त।।18।।
मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर जो हैं त्रिभुवन में विख्यात।
मल्लिनाथ जिन समवसरण में सदा सुशोभित हैं दिन रात।।19।।
तीन कषाय चौकड़ी जयकर मुनि-सु-व्रत के धारी हैं।
वन्दन जिनवर **मुनिसुव्रत** जो भविजन को हितकारी हैं।।20।।
नमि जिनवर ने निज में नमकर पाया केवलज्ञान महान।
मन-वच-तन से करूँ नमन सर्वज्ञ जिनेश्वर हैं गुणखान।।21।।
धर्मधुरा के धारक जिनवर धर्मतीर्थ रथ संचालक।
नेमिनाथ जिनराज वचन नित भव्यजनों के हैं पालक।।22।।
जो शरणागत भव्यजनों को कर लेते हैं आप समान।
ऐसे अनुपम अद्वितीय पारस हैं **पार्श्वनाथ** भगवान।।23।।
महावीर सन्मति के धारक वीर और अतिवीर महान।
चरण-कमल का अभिनन्दन है वन्दन **वर्धमान** भगवान।।24।।

*****

विदेहक्षेत्र-स्थित बीस तीर्थंकर-स्तवन

स्वचतुष्टय की सीमा में, सीमित हैं **सीमन्धर** भगवान।
किन्तु असीमित ज्ञानानन्द से सदा सुशोभित हैं गुणखान।।1।।

युगल धर्ममय वस्तु बताते नय-प्रमाण भी उभय कहे।
युगमन्धर के चरण-युगल में, दर्श-ज्ञान मम सदा रमे।।2।।

दर्शन-ज्ञान बाहुबल धरकर, महाबली हैं **बाहु** जिनेन्द्र।
मोह-शत्रु को किया पराजित शीश झुकाते हैं शत इन्द्र।।3।।

जो सामान्य-विशेष रूप उपयोग **सुबाहु** सदा धरते।
श्री सुबाहु के चरण-कमल में भविजन नित वन्दन करते।।4।।

शुद्ध स्वच्छ चेतनता ही है जिनकी सम्यक् जाति महान।
अन्तर्मुख परिणति में लखते वन्दन **संजातक** भगवान।।5।।

निज स्वभाव से स्वयं प्रकट होती है जिनकी प्रभा महान।
लोकालोक प्रकाशित होता धन्य **स्वयंप्रभ** प्रभु का ज्ञान।।6।।

चेतनरूप वृषभमय आनन से जिनकी होती पहचान।
वृषभानन प्रभु के चरणों में नमकर परिणति बने महान।।7।।

वीर्य अनन्त प्रकट कर प्रभुवर भोगें निज आनन्द महान।
ज्ञान लखें ज्ञेयाकरों में धन्य **अनन्तवीर्य** भगवान।।8।।

सूर्यप्रभा भी फीकी पड़ती ऐसी चेतन प्रभा महान।
धारण कर जिनराज **सूर्यप्रभ** देते जग को सम्यग्ज्ञान।।9।।

अहो विशाल कीर्ति धारण कर शत इन्द्रों से वन्दित हैं।
श्री **विशालकीर्ति** जिनवर नित, त्रिभुवन से अभिनन्दित हैं।।10।।

स्वानुभूतिमय वज्र धार कर, मोह शत्रु पर किया प्रहार।
वन्दन करूँ **वज्रधर** जिन को, भोगें नित आनन्द अपार।।11।।

चारुचन्द्र सम आनन जिनका, हरण करे जग का आताप।
चन्द्रानन जिन चरण-कमल में प्रक्षालित हों सारे पाप।।12।।

दर्शन-ज्ञान सुबाहु भद्र लख, भद्र भव्य भूलें आताप।
वन्दन **भद्रबाहु** जिनवर को मोह नष्ट हों अपने आप।।13।।

गुण अनन्त वैभव के धारी, सदा **भुजंगम** जिन परमेश।
जिनकी विषय-विरक्त वृत्ति लख भोग भुजंग हुए निस्तेज।।14।।

हे **ईश्वर**! जग को दिखलाते निज में ही निज का ऐश्वर्य।
निज परिणति में प्रकट हुए हैं, दर्शन-ज्ञान वीर्य सुख कार्य।।15।।

निज वैभव की परम प्रभा से, शोभित **नेमप्रभ** जिनराज।
ध्रुव की धुनमय धर्मधुरा से, पाया गुण अनन्त साम्राज्य।।16।।

परम अहिंसामय परिणति से शोभित **वीरसेन** भगवान।
गुण अनन्त की सेना में हो व्याप्त द्रव्य तुम वीर महान।।17।।

सहज सरल स्वाभाविक गुण से भूषित **महाभद्र** भगवान।
भद्र जनों द्वारा पूजित हैं, अतः श्रेष्ठ हैं भद्र महान।।18।।

गुण अनंत की सौरभ से है जिनका यश त्रिभुवन में व्याप्त।
धन्य-धन्य जिनराज **यशोधर** एक मात्र शिवपथ में आप्त।।19।।

मोह शत्रु से अविजित रहकर, अजितवीर्य के धारी हैं।
वन्दन **अजितवीर्य** जिनवर जो त्रिभुवन के उपकारी हैं।।20।।

*****

दश भक्ति संग्रह

मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं।
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा।
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।।

(वीरछन्द)

नमस्कार हो अरहन्तों को, सिद्धों को आचार्यों को।
नमूँ उपाध्यायों को, वन्दूँ जग के सब मुनिराजों को।।1।।

मंगल चार जगत में श्री अर्हन्त सिद्ध प्रभु मंगल हैं।
साधू मंगल और केवली-भाषित धर्म सुमंगल हैं।।2।।

उत्तम चार लोक में हैं अर्हन्त सिद्ध प्रभु उत्तम हैं।
साधु लोक में उत्तम जिनवर-कथित धर्म सर्वोत्तम है।।3।।

शरण चार हैं मुझे, श्री अर्हन्त सिद्ध की शरण गहूँ।
साधु-शरण में जाऊँ केवलि-कथित धर्म की शरण लहूँ।।4।।

सिद्ध भक्ति

अशरीरी चैतन्य स्वरूपी दर्शन-ज्ञान सुशोभित हैं।
निराकार-साकार सिद्ध प्रभु के प्रसिद्ध ये लक्षण हैं।।1।।

मूल और उत्तर प्रकृति के बंध-उदय-सत्ता विरहित।
मंगलमय गुण अष्ट अलंकृत सिद्ध प्रभु संसार रहित।।2।।

नष्ट हुए हैं अष्टकर्म अरु नित्य निरंजन आनंद-कंद।
अष्ट गुणान्वित परम तृप्त लोकाग्र विराजें सिद्ध महन्त।।3।।

कर्मजन्य मल नष्ट हुए प्रविशुद्ध ज्ञानमय सत्तारूप।
मुझ पर हों प्रसन्न त्रिभुवन के मुकुटमणि हे सिद्ध प्रभु।।4।।

गमनागमन विमुक्त हुए जो किया कर्मरज का संहार।
शाश्वत सुख को प्राप्त सिद्ध प्रभु वन्दनीय हैं बारंबार।।5।।

मंगलमय अरु जयस्वरूप जो निर्मल दर्शन-ज्ञान स्वरूप।
तीन लोक के मुकुट सिद्ध भगवन्तों को मैं सदा नमूँ।।6।।

समकित दर्शन ज्ञान वीर्य सूक्ष्मत्व और अवगाहस्वरूप।
अगुरुलघु अरु अव्याबाधी अष्ट गुणान्वित सिद्ध प्रभु।।7।।

तप से सिद्ध तथा नय संयम चारित से जो सिद्ध हुए।
ज्ञान और दर्शन से सिद्ध हुए उनको मैं नमन करूँ।।8।।

अंचलिका

हे प्रभु! सिद्ध भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
समकित दर्शन ज्ञान चरितयुत अष्टकर्म-बिन गुण संयुक्त।
तप-नय रत्नत्रय से सिद्ध हुए लोकाग्र विराजे सिद्ध।।

उन त्रिकालवर्ती सिद्धों को वन्दन कर हम धन्य हुए।
दुख विनष्ट हों कर्म नष्ट हों बोधिलाभ हो सुगति मिले।।
जिनगुण संपत्ति मुझे प्राप्त हो मरणसमाधि से भव पार।
पूजा-स्तुति कायोत्सर्ग करूँ आचार्यों के अनुसार।।

श्रुत भक्ति

अर्हत् वचनों से प्रसूत गणधर विरचित हैं द्वादश अंग।
विविध अनेक अर्थ गर्भित हैं धारें सुधी मुनीश्वर गण।।
अग्रद्वार शिवपुर का, मिलता व्रताचार फल, ज्ञेय-प्रदीप।
त्रिभुवन सारभूत श्रुत को मैं नितप्रति वन्दूँ भक्ति सहित।।1।।
जिनध्वनि से निसृत वचनों को इन्द्रभूति आदिक गणधर-
सुनकर धारण करें प्रकाशित, द्वादशांग को करूँ नमन।।2।।
कोटि एक सौ बारह एवं लाख तिरासी अट्ठावन-
सहस पाँच पद भूषित अंग प्रविष्ट ज्ञान को करूँ नमन।।3।।
अंग-बाह्य श्रुत में पद हैं कुल आठ करोड़ और इक लाख-
आठ हजार एक सौ पचहत्तर पद को नित नमता माथ।।4।।
अरहन्तों से कहा गया जो गणधर देवों ने गूँथा।
भक्ति सहित श्रुतज्ञान महोदधि को मैं नमस्कार करता।।5।।

अंचलिका

हे प्रभु! श्रुत भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
अंग उपांग प्रकीर्णक प्राभृत अरु परिकर्म प्रथम अनुयोग।
सूत्र पूर्वगत तथा चूलिका स्तुति धर्मकथामय बोध।।
अर्चन पूजन वन्दन नमन करूँ होवें दु:ख कर्मक्षय।
बोधि लाभ हो सुगति गमन हो जिनगुण संपति हो अक्षय।।

चारित्र भक्ति

(वीरछन्द)

जो भव-दुख से डरते हैं अरु अविनाशी सुख को चाहें।
पाप शान्त हैं निर्मल मति हैं शीघ्र मुक्ति सुख को पावें।।
वे तेजस्वी प्राणी धारें जिन-भाषित चारित्र महान।
मोक्ष-महल में जाने हेतु जो विशाल अनुपम सोपान।।1।।

(हरिगीतिका)

सर्व-वेदी वीर जिन द्वारा कहा यह धर्म है।
लोकत्रय के सर्व जीवों को सुहित का मर्म है।।2।।
घातिकर्म विनाशकर्ता, घातिकर्म विनाश को।
चारित्र पाँच प्रकार कहते भव्य जीवों को अहो।।3।।
चारित्र सामायिक कहा अरु छेद-पद-स्थापना।
परिहार-शुद्धि और सूक्षम साम्पराय सुबुध कहा।।4।।
चारित्र पंचम यथाख्यात तथाख्यात कहें इसे।
यह पाँच विध चारित्र मंगल पाप शोधक भी कहें।।5।।
अहिंसादिक पाँच भेद कहें जिनेश्वर व्रत-महा।
पाँच समिति पाँच इन्द्रिय का सुनिग्रह भी कहा।।6।।
षडावश्यक भूशयन अस्नान एवं नग्नता।
खड़े हो इक बार लें आहार, दन्त न धोवना।।7।।
केश-लोंच करें कहे ये मूलगुण अठबीस हैं।
धर्म दश त्रय गुप्ति एवं शील उत्तर गुण कहे।।8।।
बाईस परीषह-जयादिक उत्तर कहे गुण साधु के।
अन्य विविध प्रकार सहकारी कहे गुण-मूल के।।9।।

यदि राग-द्वेष-विमोह से हो हानि गुण समुदाय में।
वन्दना कर सिद्ध की परिहार हो उस दोष का।।10।।
सर्व संयम-धर मुमुक्षु दोष के परित्याग से।
मोक्ष-सुख पायें त्वरित वे सकल संयम सिद्धि से।।11।।
संयम अहिंसा और तपमय धर्म मंगल श्रेष्ठ है।
इस धर्म में जो मन लगाये देव भी उसको नमें।।12।।

अंचलिका

(वीरछन्द)

हे प्रभु! चारित भक्ति करके मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान सुशोभित सर्वश्रेष्ठ शिवमार्ग स्वरूप।
पंच महाव्रत पंच समिति त्रय गुप्ति निर्जरा क्षमा स्वरूप।।1।।
ज्ञान-ध्यान का कारण है यह सम्यक्चारित धर्म महान।
निज स्वरूप में लीनरूप सामायिक का यह द्वार महान।।
अर्चन पूजन वंदन नमन करूँ होवें दु:ख कर्मक्षय।
बोधिलाभ हो सुगति गमन हो जिनगुण संपत्ति हो अक्षय।।2।।

आचार्य भक्ति

(वीरछन्द)

देश जाति कुल शुद्ध मनो-वच-तन विशुद्धि से जो संयुक्त।
करें आपके पद-पंकज जग में मेरा कल्याण सुनित्य।।1।।
स्व-पर समय के ज्ञाता हैं जो आगम हेतु जाननहार।
श्रुत स्वरूप के ज्ञाता मुनिवर श्रुत स्वरूप के जाननहार।।2।।

बाल वृद्ध रोगी गिलान आदिक सब मुनियों के अपराध।
जानें भलीभाँति अरु उनको दृढ़ चारित्र करावनहार।।3।।
गुप्ति समिति व्रत और अन्य को करते हो शिवपथ संयुक्त।
उपाध्याय गुण निलय और तुम साधु गुणों से भी हो युक्त।।4।।
भू-सम क्षमा शील हो निर्मल जल सम रहते सदा प्रसन्न।
कर्मदाह्य को अग्नि तुल्य हो वायु समान सदा नि:संग।।5।।
गगन तुल्य निर्लेप, सिन्धु सम हो, गंभीर गुणों की खान।
आचार्यों के चरण-कमल में निर्मल मन से करूँ प्रणाम।।6।।
इस संसार भयानक वन में भटक रहे जो भवि प्राणी।
तव प्रसाद से ही पाते हैं मोक्षमार्ग नित सुखदानी।।7।।
अशुभ लेश्या से विहीन तुम शुभ लेश्याओं से संयुक्त।
आर्त-रौद्र दुर्ध्यान रहित हो धर्म शुक्ल से हो संयुक्त।।8।।
अवग्रह ईहा अरु अवाय धारणा गुणों से भूषित हो।
हे श्रुतार्थ भावना सहित गुरु! तुम्हें भाव से नमन करूँ।।9।।
प्रभो! आपका गुण स्तवन मुझ अज्ञानी से किया गया।
गुरु-भक्ति संयुक्त मुझे, हो बोधिलाभ उपलब्ध सदा।।10।।

अंचलिका

हे प्रभु! सूरि भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित युत पंचाचार धरें आचार्य।
श्रुत उपदेशक उपाध्याय, रत्नत्रय लीन रहें मुनिराज।।
अर्चन पूजन वंदन नमन करूँ होवें दुख कर्मक्षय।
बोधिलाभ हो सुगति गमन हो जिनगुण संपत्ति हो अक्षय।।

योग भक्ति

(वीरछन्द)

मैं अनगार गुणों से भूषित गणधर की स्तुति करता।
दोनों हाथ जोड़, मस्तक पर अंजुलि धर वंदन करता।।1।।

दो प्रकार के भाव जीव के सम्यक् और कहे मिथ्या।
तज मिथ्यात्व गहें जो सम्यक् मैं उनको वंदन करता।।2।।

राग-द्वेष से मुक्त, दण्ड-त्रय से विमुक्त, त्रय-शल्य विहीन।
गारव-त्रय प्रविमुक्त, रत्नत्रय से विशुद्ध को नमन करूँ।।3।।

कृश हैं चार कषायें, चउ गति भव संसृति से जो भयभीत।
पाँचों आस्रव से विरक्त पंचेन्द्रिय विजयी को वन्दूँ।।4।।

दया करें छहकाय जीव पर छह अनायतन रहित प्रशान्त।
सप्त भयों से मुक्त सभी को अभयदान दें उन्हें नमन।।5।।

नष्ट हुए आरम्भ-परिग्रह अष्ट कर्म-संसार विनष्ट।
शोभित हुए परमपद में जो, इष्ट गुणों के ईश नमन।।6।।

नव विध ब्रह्मचर्य के धारी नव विध नय स्वरूप जानें।
जो दश विध धर्मस्थ रहें दश संयम युत को नमन करूँ।।7।।

एकादश अंग श्रुत पारंगत द्वादशांग में हुए कुशल।
बारह तप धारें अरु तेरह क्रिया करें जो उन्हें नमन।।8।।

चौदह जीव समास-दयायुत चौदह परिग्रह रहित विशुद्ध।
चौदह पूर्वों के पाठी चौदह मल वर्जित को वंदन।।9।।

एक दिवस से छह महिने तक का धारण करते उपवास।
रवि-सन्मुख तप करें, कर्म चकचूर शूर-पद में मम वास।।10।।

बहुविध प्रतिमा योग धरें वीरासन पार्श्व निषद्या धार।
नहीं थूकते, नहीं खुजाते, तन-निर्मम को नमन हजार।।11।।

ध्यान धरें अरु मौन रहें, नभ या तरुतल में करे निवास।
लोंचे केश, न दूर करें रोगों को, उन्हें नमन शत बार।।12।।

तन मलीन, पर कर्ममलों की कल्मषता से रहित हुए।
नख अरु केश बढ़ें, तप लक्ष्मी से भूषित को नमन करें।।13।।

ज्ञान-नीर अभिषिक्त, शील गुण भूषित, तप-सुगंध भरपूर।
राग रहित, श्रुत सहित, मुक्तिपथ नायक मुनिवर को वन्दूँ।।14।।

उग्र दीप्त अरु तप्त महातप घोर तपों को जो धारें।
तप संयम अरु ऋद्धिसहित, सुरपूजित को हम नमन करें।।15।।

आमौषधि खेलौषधि विप्रौषधि सर्वौषधि के धारी।
तप प्रसिद्ध कृतकृत्य हुए उन मुनिराजों को नमन करूँ।।16।।

अमृत मधु घृत क्षीरस्रावि अक्षीण महानस के धारी।
मन वच तन बल ऋद्धियुक्त को मन वच तन से नमन करूँ।।17।।

कोष्ठ बीज पादानुसारि, संभिन्न श्रोत्र ऋद्धि धारी।
अवग्रह ईहा में समर्थ, सूत्रार्थ निपुण मुनि को वन्दूँ।।18।।

मति-श्रुत अवधि मन:पर्ययज्ञानी अरु केवलज्ञानी को।
वन्दन जग प्रदीप्त प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञानधारी मुनि को।।19।।

नभ-तंतु-जल-पर्वत-अटवी-गामी जंघाधारी को-
वंदन, ऋद्धि विक्रिया, विद्याधर अरु प्रज्ञा श्रमणों को।।20।।

चतुरांगुल ऊपर एवं फल-फूलों पर चलने वाले।
अनुपम तप से पूज्य सुरासुर से वन्दित को नमन करूँ।।21।।

जीत लिया भय-उपसर्गों को इन्द्रिय और परिग्रह को।
वन्दन मोह-राग-रुष विजयी सुख-दुःख समताधारी को।।22।।

राग-द्वेष से रहित और मुझसे स्तुत्य सभी पद-पूज्य।
मुनिगण को उत्तम समाधि दें मेरे भी दुःख दूर करें।।23।।

अंचलिका

हे प्रभु! योग भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
ढाई द्वीप-द्वय सिन्धु, कर्मभूमि पन्द्रह आतापन योग।
वृक्षमूल, नभवास योग, वीरासन एक पार्श्वमय योग।।1।।

कुक्कुट आसन, योग तथा उपवास पक्ष-उपवास सदा।
योगसहित सब साधु गुणों की करता हूँ मैं नित अर्चा।।
पूजन वन्दन नमन करूँ मैं होवे सब दुःख कर्मक्षय।
बोधिलाभ हो सुगति गमन हो जिनगुण संपत्ति हो अक्षय।।12।।

***

निर्वाण भक्ति[1]

(दोहा)

वीतराग वन्दौं सदा, भावसहित सिर नाय।
कहूँ कांड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय।।

(चौपाई)

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, बन्दौं भाव-उगति उर धार।।1।।

1. यह अनुवाद भैया भगवतीदासजी द्वारा किया गया है।

चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखर समेद जिनेसुर बीस, भावसहित बन्दौं निश-दीस।।2।।

वरदत्तराय रु इन्द्र मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि, बन्दौं भावसहित कर जोड़ि।।3।।
श्री गिरनारशिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
शम्भु प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसुपाय।।4।।

रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोडि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरि बन्दौं निरधार।।5।।

पांडव तीन द्रविड़राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजयगिरि के सीस, भावसहित बन्दौं निश-दीस।।6।।

जे बलभद्र मुकत में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्री गजपंथशिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँकाल।।7।।

राम हणू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि-निन्याणव मुक्तिपयान, तुंगीगिरि वन्दौं धरि ध्यान।।8।।

नंग-अनंगकुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमाण।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते बन्दौं त्रिभुवनपति ईश।।9।।

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते बन्दौं धरि परम हुलास।।10।।

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोड़ि वन्दौं भव पार।।11।।

बड़वानी बड़नगर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते बन्दौं भव-सागर-तर्ण।।12।।

सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर शिखर मँझार।
चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गये बन्दौं निज तास।।13।।

फलहोड़ी बड़ग्राम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरिरूप।
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहाँ, मुक्ति गये बन्दौं नित तहाँ।।14।।

बालि महाबालि मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते बन्दौं नित सुरत सँभार।।15।।

अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेंढगिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय।।16।।

वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिमदिशा कुंथुगिरि सोय।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम।।17।।

जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वंदन करूँ जोरि जुग पान।।18।।

समवसरण श्रीपार्श्व जिनंद, रेसन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते बन्दों नित धरम-जिहाज।।19।।

मथुरापुर पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामीजी निर्वाण।
चरम केवली पंचम काल, ते बन्दौं नित दीनदयाल।।20।।

तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मन वच काय सहित सिरनाय, वन्दन करहिं भविक गुणगाय।।21।।

संवत् सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल।।22।।

अंचलिका

प्रभु निर्वाण भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।

तीन वर्ष अरु साढ़े आठ माह थे शेष चतुर्थम काल।
अन्त समय पावानगरी में कार्तिक कृष्ण अमावस प्रात।।1।।

प्रात:काल नक्षत्र स्वाति में अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान।
कर्म अघाति क्षयकर प्रभु ने पाया पद निर्वाण महान।।
चार निकायी देव तभी परिवार सहित सब आते हैं।
गन्ध पुष्प अरु चूर्ण धूप सब दिव्य वस्तुएँ लाते हैं।।2।।

निर्वाण महाकल्याणक की पूजा करते हैं भलीप्रकार।
करें अर्चना और वन्दना नमन करें वे विविध प्रकार।।
मैं भी अर्चन पूजन वन्दन नमन करूँ हो सब दुख क्षय।
बोधिलाभ हो सुगतिगमन हो जिनगुण सम्पत्ति हो अक्षय।।3।।

तीर्थंकर भक्ति

स्तुति करूँ अनन्त केवली, तीर्थंकर भगवन्तों की।
महाप्राज्ञ रजमल विहीन, चक्री एवं जग-वन्दित की।।1।।

लोक प्रकाशक धर्मतीर्थकर्त्ता-जिन को वन्दन करता।
चौबिस केवलि भगवन्तों का ही मंगल कीर्तन करता।।2।।

ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन एवं सुमति जिनेश्वर को।
वन्दूँ पद्मप्रभ सुपार्श्व एवं चन्द्रप्रभ जिनवर को।।3।।

सुविधिनाथ या पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस अरु वासुपूज्य।
विमल, अनन्त-रु धर्म शान्ति भगवन्तों को मैं नमन करूँ।।4।।

कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लि, मुनिसुव्रत नमि भगवंतों को।
वन्दन करूँ अरिष्टनेमि, पारस श्री वीर जिनेश्वर को।।5।।

रज-मल और जरा-मरणान्तक, जो मुझसे स्तुत्य हुए।
चौबीसों जिनवर तीर्थंकर भगवन् हों प्रसन्न मुझ पर।।6।।

मुझसे कीर्तित, वंदित, पूजित, लोकोत्तम कृतकृत्य जिनेन्द्र।
ज्ञान-बोधि-आरोग्य-समाधि-लाभ सदैव प्रदान करें।।7।।

जो हैं शशि से भी अति निर्मल रवि से अधिक प्रभामण्डित।
सागर-सम गम्भीर, सिद्ध पद प्राप्त, मुझे भी दें सिद्धि।।8।।

***

शान्ति भक्ति

(छन्द क्रमांक 9 से 15 एवं 17 संस्कृत भाषा में प्रचलित
शान्तिपाठ का अनुवाद है।)

प्रभो! आपकी चरण शरण में भक्तिवशात् न जन आते।
विविध कर्म-संतप्त भव्य जन शान्ति हेतु शरणा लेते।।
अतिप्रचंड किरणों से रवि जब जग को व्याकुल कर देता।
चन्द्र-किरण, जल, छाया से अनुरागोत्पन्न करा देता।।1।।

क्रुद्ध सर्प से डसे मनुज के दुर्जय विष का तीव्र प्रभाव।
विद्या औषधि मन्त्र हवन जल से हो जाता शीघ्र प्रशान्त।।

जो भविजन प्रभु के चरणाम्बुज की स्तुति सन्मुख होते।
क्या आश्चर्य कि उनके आधि-व्याधि विघ्नादि शान्त होते।।2।।

तप्त स्वर्णगिरि की शोभा से ईर्ष्या करती जिनकी कान्ति।
प्रभु-चरणों में वन्दन से जग की पीड़ा हो जाती शान्त।।

प्रातकाल दैदीप्यमान रवि-किरणों का पाकर आघात।
यथा नेत्र की कान्तिविनाशक निशा विलय को होती प्राप्त।।3।।

त्रिभुवन अधिपतियों पर विजय प्राप्त करने से गर्व हुआ।
कालरूप दावानल जग में अतिशय क्रूर प्रचण्ड हुआ।।

बच सकता संसारी प्राणी कहो कौन किस विधि द्वारा।
तव पद-पंकज की स्तुति-सरिता ने यदि न उसे तारा।।4।।

लोकालोक झलकते जिसमें ऐसी ज्ञानमूर्ति जिनराज।
रत्नजड़ित सुन्दर दण्डों से शोभित श्वेत छत्रत्रय नाथ।।
जैसे गर्वित सिंह-गर्जना से जंगली हाथी भागें।
तव चरणों की पावन-स्तुति के गीतों से रोग नशें।।5।।

सुर-वनिता के लोचन-वल्लभ श्रीवर चूड़ामणि जिनराज।
बाल-दिवाकर शोभाहारी जन-प्रिय भामण्डल युत आप।।
प्रभो! आपके चरण-कमल की स्तुति करती सहज प्रदान।
अव्याबाध अचिंत्य अतुल अनुपम शाश्वत आनन्द प्रदान।।6।।

जबतक प्रभासमूहयुक्त जगभासक रवि का उदय न हो।
तबतक पंकज वन धारण करते हैं सुप्त अवस्था को।।
हे प्रभु! जबतक उदित न होता तव चरणों का मधुर प्रसाद।
तब तक जग के जीव वहन करते रहते पापों का भार।।7।।

शांत-चित्त हों शांति चाहने वाले भूतल-वासी जीव।
तव चरणों में शान्ति प्राप्त करते हैं निश्चित शांति जिनेन्द्र।।
चरण-युगल आराध्य हमारे, पढ़ूँ शान्ति अष्टक हे नाथ!
करुणा कर अब मेरी दृष्टि निर्मल करो जिनेश्वर आज।।8।।

शशिसम निर्मल वदन, शीलगुण व्रतधारी हे शांति जिनेन्द्र।
शत-अठ लक्षण से शोभित तन, नमूँ जिनोत्तम कमलनयन।।9।।

मन वांछित पंचम चक्री हो, पूजित इन्द्र नरेन्द्रों से।
शांति प्रदायक, शान्ति हेतु मैं सोलहवें जिननाथ नमूँ।।10।।

तरु-अशोक, सुर पुष्पवृष्टि दुन्दुभि सिंहासन दिव्यवचन।
छत्रत्रय, भामण्डल, चौंसठ चँवर, प्रातिहार्य अनुपम।।11।।

जगत्पूज्य हे शांति प्रदायक, शीश झुकाऊँ शांति जिनेन्द्र।
सर्व गणों को शान्ति करो, मुझ पाठक को दो शांति परम।।12।।

कुण्डल, मुकुट हार रत्नोंयुत इन्द्रों द्वारा पूज्य हुए।
उत्तम वंश, प्रदीप जगत के, सतत शांति दो प्रभो मुझे।।13।।

सम्यक् पूजक, प्रतिपालक सामान्य तपोधन यतियों को।
देश, राष्ट्र अरु नगर भूप को, हे जिन! शांति प्रदान करो।।14।।

राजा हो बलवान, धार्मिक, सर्वजनों का हो कल्याण।
बरसें मेघ समय पर, होवें सर्व व्याधियाँ क्षय को प्राप्त।।
जीवों को पलभर भी चोरी मारी अरु दुर्भिक्ष न हो।
सबको सुखदायी जिनवर का धर्मचक्र जयवन्त रहो।।15।।

रत्नत्रय हो सदा प्रकाशित, ऐसा द्रव्य सुदेश मिले।
समीचीन तप की वृद्धि हो, ऐसा उत्तम काल मिले।।
निर्मल परिणति हो प्रसन्न, प्रभु! ऐसा उत्तम भाव मिले।
मोक्षार्थी मुनिगण की परिणति में रत्नत्रय सुमन खिलें।।16।।

घातिकर्म क्षय किये जिन्होंने उदित हुआ कैवल्य प्रकाश।
शांति प्रदान करें जग को वृषभादिक चौबीसों जिनराज।।17।।

अंचलिका

हे प्रभु! शांति भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
पंच महाकल्याण सुशोभित प्रातिहार्य अतिशय भूषित।
बत्तिस इन्द्रों के मणिमय किरीटयुत मस्तक से पूजित।।1।।

चक्री नारायण बलभद्र ऋषि यति अनगार सहित।
लाखों स्तुतियों के घर ऋषभादि वीर पर्यन्त जिनेन्द्र।।
सदा अर्चना पूजा वन्दन नमन करूँ हों सब दुखक्षय।
बोधिलाभ हो सुगति गमन हो जिनगुण सम्पत्ति हो अक्षय।।2।।

***

समाधि भक्ति

(छन्द क्रमांक 2 एवं 7 प्रचलित शान्तिपाठ में भी पढ़ा जाता है।)

हे प्रभु! निज संवेदन लक्षण भूषित श्रुत चक्षु द्वारा।
केवलज्ञान चक्षु से मंडित, आज आपको देख रहा।।1।।

शास्त्राभ्यास जिनेन्द्र भक्ति संगति आर्यों की रहे सदा।
सज्जन का गुणगान करूँ मैं दोष कथन नहिं करूँ कदा।।
हित-मित-प्रिय वाणी हो सबसे आत्म-भावना ही भाऊँ।
गति अपवर्ग न होवे जब तक भव-भव में यह वर पाऊँ।।2।।

जिनपथ में रुचि, विरति अन्य से जिनगुण स्तवन में अतिलीन।
निष्कलंक निर्दोष भावना हो मेरी भव-भव में पीन।।3।।

गुरु-चरणों में यति समूह में जिन-शासन का हो जय घोष।
भव-भव में हो प्राप्त मुझे संन्यास पूर्वक देह वियोग।।4।।

जन्म-जन्म में किये पाप जो कोटि जन्म से संचित हैं।
जन्म-मृत्यु अरु जरा मूल जो, जिन-वन्दन से शीघ्र नशें।।5।।

सेवार्पित भक्तों के हैं जो, कल्पबेलि तव चरण-कमल।
उनकी सेवा में बीता है, बचपन से अब तक का काल।।
हे प्रभु! प्राण-प्रयाण क्षणों में मेरा कण्ठ न हो असफल।।
नाथ! आपके नाम कथन में चाहूँ आराधन का फल।।6।।

तेरे चरण-युगल मम उर में, मम उर भी तव चरणों में।
सदा बसें हे जिनवर! जब तक मुक्ति-लक्ष्मी प्राप्त हमें।।7।।

जिन-भक्तों की भक्ति मात्र ही कुगति निवारण में पर्याप्त।
भरे पुण्य भण्डार और शिव-पद प्रदान में पूर्ण समर्थ।।8।।

पंचमेरु संबंधी पाँच अरिंजय जिन मतिसागर पाँच।
पाँच यशोधर जिनवर वन्दूँ, वन्दूँ जिन सीमन्धर पाँच।।9।।

रत्नत्रय को नमन करूँ, चौबीस जिनेश्वर को वन्दूँ।
पंच परमगुरु को वन्दूँ मुनि चारण-चरण सदा वन्दूँ।।10।।

आत्मब्रह्म का वाचक अथवा परमेष्ठी पद का वाचक।
सिद्धचक्र के बीजभूत अर्हं अक्षर का ध्यान करूँ।।11।।

अष्टकर्म से मुक्त हुए जो मुक्ति श्री के भव्य सदन।
सम्यक्त्वादि गुणों से भूषित सिद्धचक्र को करूँ नमन।।12।।

सुर संपत्ति का आकर्षण है, मुक्तिश्री का वशीकरण।
चहुँगति विपदा का उच्चाटन पापों का है नाशकरण।।
दुर्गति का रोधक स्तम्भन मोह हेतु सम्मोहन मन्त्र।
नमस्कार परमेष्ठी वाचक मम रक्षक हो आराधन।।13।।

इस संसार अनन्तानन्त जन्म-संतति के छेदक हैं।
जिन-पद-पंकज का सुमरन ही शरणभूत है सदा मुझे।।14।।

तुम बिन नहीं शरण है कोई एक मात्र हो शरण तुम्हीं।
अत: जिनेश्वर! करुणा करके रक्षा करो सदा मेरी।।15।।

नहीं नहीं है नहीं अरे! रक्षक कोई इस त्रिभुवन में।
वीतराग जिनदेव सिवा, नहिं हुआ और होगा जग में।।16।।

जिनवर भक्ति जिनवर भक्ति जिनवर भक्ति प्रतिदिन हो।
सदा मुझे हो सदा मुझे हो सदा मुझे हो भव-भव में।।17।।

हे जिन! तेरे चरण-कमल की भक्ति सदा ही मैं चाहूँ।
पुनः-पुनः तव चरणों की ही भक्ति सदा ही मैं चाहूँ।।18।।

विघ्न समूह, शाकिनी एवं भूत, सर्प हों नष्ट सभी।
विष भी हो जाता है निर्विष, स्तुति करें जिनेश्वर की।।19।।

अंचलिका

यह समाधि भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।

रत्नत्रय के प्रतिपादक अरु परमातम के ध्यान स्वरूप।
शुद्ध आत्मा की करता मैं सदा वन्दना मंगलरूप।।

सदा अर्चना पूजन वन्दन नमन करूँ हों सब दु:ख क्षय।
बोधि लाभ हो सुगति गमन हो जिनगुण संपत्ति हो अक्षय।।

***

लघु चैत्य भक्ति

भरतादिक के गिरि-शिखरों पर पंचमेरु नन्दीश्वर में।
जितने चैत्यालय त्रिलोक में नमन करूँ जिन-चरणों में।।1।।

पृथ्वीतल पर कृत्रिम अकृत्रिम व्यंतर भवनवासि दिवि में।
यहाँ मनुजकृत, सुरपति वन्दित जिन चैत्यालय को वन्दूँ।।2।।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध के ढाई द्वीप में जो विचरें।
चंद्र, कमल अरु मोरकंठ, कंचन, मेघों सम कान्ति धरें।।

सम्यग्ज्ञान चरित लक्षण धर भस्म करें कर्मेन्धन को।
भूत भविष्यत वर्तमान के वन्दूँ सर्व जिनेश्वर को।।3।।

पंचमेरु अरु कुलाचलों, विजयार्धों, जम्बू, शाल्मलि पर।
चैत्यवृक्ष, वक्षार, रुचकगिरि, रति, कुंडल, मनुजोत्तर पर।।
इष्वाकार गिरि, अंजन, दधिमुख, व्यन्तर सुर-लोकों में।
ज्योतिर्लोक, भवन, भूतल पर जिनमंदिर को नमन करूँ।।4।।

इन्द्र, नरेन्द्रों, असुरेन्द्रों से धरणेन्द्रों से पूजित हैं।
पाप-प्रणाशक, भव्य जनों का मन आकर्षित करते हैं।।
घंटा, ध्वजा, धूपघट माला मंगल द्रव्य विभूषित हैं।
जग के सब जिन चैत्यालय को नितप्रति वन्दन करता मैं।।5।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

हे प्रभु! चैत्य भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
अधो-मध्य अरु ऊर्ध्वलोक के कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय।
चतुर्निकायी सुर परिवार भक्ति से आते जिन-आलय।।1।।

दिव्य गंध, जल अक्षत दिव्य सुमन धूप फल अरु नैवेद्य।
नित्य वन्दना पूजा अर्चा नमस्कार करते सब देव।।
मैं भी नित्य वन्दना पूजा अर्चा करता, हों दुख क्षय।
बोधि लाभ हो सुगति गमन हो जिन गुण सम्पत्ति हो अक्षय।।2।।

*****

कल्पद्रुम स्तवन

(वीरछन्द)

कल्पद्रुम यह समवसरण है भव्य जीव का शरणागार।
जिनमुख-घन से सदा बरसती चिदानन्दमय अमृतधार।।

जहाँ धर्म-वर्षा होती वह समवसरण अनुपम छविमान।
कल्पवृक्ष-सम भव्य जनों को देता गुण अनन्त की खान।।
सुरपति की आज्ञा से धनपति रचना करते हैं सुखकार।
निज की कृति ही भासित होती अति आश्चर्यमयी मनहार।।1।।

निज ज्ञायकस्वभाव में जमकर प्रभु ने जब ध्याया निजध्यान।।
मोह-भाव क्षय कर प्रकटाया यथाख्यात-चारित्र महान।।
तब अन्तर्मुहूर्त में प्रकटा केवलज्ञान महा सुखकार।
दर्पण में प्रतिबिम्ब तुल्य जो लोकालोक प्रकाशनहार।।2।।

गुण अनन्तमय कला प्रकाशित चेतन-चन्द्र अपूर्व महान।
राग आग की दाह रहित शीतल झरना झरता अभिराम।।
निज वैभव में तन्मय होकर भोगें प्रभु आनन्द अपार।
ज्ञेय झलकते सभी ज्ञान में किन्तु न ज्ञेयों का आधार।।3।।

दर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुख से है सदा सुशोभित चेतनराज।
चौंतिस अतिशय आठ प्रातिहार्यों से शोभित हैं जिनराज।।
अन्तर्बाह्य प्रभुत्व निरखकर भव्य लहें आनन्द अपार।
प्रभु के चरण-कमल में वन्दन कर पाएँ सुख-शान्ति अपार।।4।।

*****

श्री समवसरण स्तुति

मंगलाचरण (दोहा)

धर्म-काल वर्ते अहो! धर्म-स्थान विदेह।
धर्म-प्रवर्तक बीस जिन, गर्जे नित्य सदेह।।1।।

समवसरण महिमा (वीरछन्द)

जिनवर जहाँ सुशोभित हैं वह समवसरण अति शोभावान।
जिसकी लोकोत्तर शोभा से फीका पड़ता है सुरधाम।।
सुरपति की आज्ञा से धनपति रचना रचते रम्य महान्।
स्वयं स्वयं की रचना लखकर स्वयं लहें आश्चर्य महान।।2।।

समवसरण विस्तार (सोरठा)

भव्य अचिन्त्य महान, रत्नमयी रचना अहो।
जिनवर धर्म-स्थान, बारह योजन व्यास का।।3।।

धूलिसाल कोट (वीरछन्द)

समवसरण को घेरे कंकण-सम यह धूलीसाल विशाल।
विविध वर्ण रत्नों की रज से रच कर जिसको देव निहाल।।
रत्नों से किरणों की बहुरंगी ज्योति अति फैल रही।
क्या यह इन्द्र-धनुष उतरा है सेवा करने जिनवर की?।।4।।

(दोहा)

धूलिसाल के सामने, मानस्तंभ हैं चार।
स्वर्णमयी अति उच्च हैं, मानी-मान निवार।।5।।

चैत्यप्रसाद भूमि (वीरछन्द)

छत्र चँवर शोभें, भव्यों का करें निमन्त्रण, ध्वजा विशाल।
घन्टे अरु वाजित्र बजें, सुरपति करते प्रतिमा प्रक्षाल।।

चहुँ दिशि वापी चार स्फटिक-तटयुत निर्मल नीर भरा।
भाव सहित वन्दूँ यह मानस्तम्भ मान सब गला रहा।।6।।

(हरिगीतिका)

जिनालय की भूमि अति पावन तथा दैवी अहो।
है अनेक जिनालयों की मनोहर रचना अहो।।
देव अरु मानव वहाँ प्रभु भक्ति-भीने हृदय से।
नृत्य करते, प्रभु चरण में चित्त को अर्पित करें।।7।।

खातिका भूमि (दोहा)

जल से पूरित खातिका, शोभित वलयाकार।
हँसे तरंगों से सदा, जलचर रमें अपार।।8।।

(चौपाई)

निर्मल नीर सुतट मणियों का, क्या यह चन्द्रकान्तमणि द्रवता?
प्रभु-पूजन की उच्च भावना, ले मानो उतरी सुर-सरिता।।9।।

लता वन भूमि (दोहा)

भव्य लतावन की धरा, चहुँ दिशि महके गन्ध।
खिले पुष्प ऐसे लगें, लता हँस रही मन्द।।10।।

(हरिगीतिका)

विविध रंगी पुष्प-रज उड़ती जहाँ गति-मन्द से।
जो ढाँकती वन गगन को नित सान्ध्य रवि के रंग से।।
दिव्य क्रीड़ा स्थल जहाँ पर लता मण्डप भव्य है।
शीतल शिला शशिकान्तमणि की इन्द्र विश्रांति लहें।।11।।

(चौपाई)

षट् ऋतु के सब फूल खिले हैं, मंद सुगंध पवन बहती है।
क्या सुगन्ध यह वन पुष्पों की? या सुकीर्ति है श्री जिनवर की।।12।।

स्वर्णमयी कोट (दोहा)

स्वर्णमयी मणि जड़ित है, कोट अति उत्तंग।
कनक-प्रभा में मानिये, शोभित हैं नक्षत्र।।13।।

(वीरछन्द)

कर में शस्त्र लिये हैं सुरगण द्वारपाल बन खड़े हुए।
मंगल द्रव्य सुरम्य नवों-निधि तोरण भी हैं बँधे हुए।।
दोनों ओर द्वार के सुन्दर नाट्य भवन है स्फटिकमयी।
और दूर पर धूम्र-घटों की धूम गगन को ढाँक रही।।14।।

(हरिगीतिका)

यह नाट्य-शाला गूँजती वीणा मृदंग सु-ताल से।
गन्धर्व किन्नर गान से सुरकामिनी के नृत्य से।।
देवांगना जय-घोष करतीं हर्षमय नर्तन करें।
जिन-विजय का अभिनय करें कुसुमांजली अर्पण करें।।15।।

उपवन भूमि (वीरछन्द)

चम्पक आम्र अशोक आदि वन भू की छटा मनोहर है।
रम्य नदी, तालाब, भवन अरु चित्रकला-गृह सुन्दर है।।
मन्द स्वरों में कोकिल कुहके वृक्ष फलों से लदे हुए।
प्रभु-चरणों में अर्पित करने अर्घ्य लिये वे खड़े हुए।।16।।

(त्रोटक)

बहु वृक्ष विशाल मनोहर हैं, रविकिरणों के अवरोधक हैं।
जगमग-जगमग अरु तेज महा, है दिन या रात न जाय कहा।।17।।

तहँ चैत्य तरु-तल दिव्य महा, जिनबिम्ब सुशोभित होय जहाँ।
सुरगण भक्ति से नाच रहे, जय-घोषों से वन गूँज उठे।।18।।

(दोहा)

रत्न जड़ित है स्वर्ण की कटि-करधनी समान।
शोभित है वन-वेदिका फिर ध्वज भूमि जान।।19।।

ध्वज भूमि (हरिगीत)

है स्वर्ण के स्तम्भ पर ध्वज पंक्ति की शोभा महा।
कमल माला अरु मयूरादिक सुचिह्नों-युत अहा!।
क्या त्रिलोकीनाथ का यह विजय-ध्वज फहरा रही?
प्रभु पूजने के लिए अथवा जगत को बतला रही।।20।।

रजतमयी कोट (दोहा)

चाँदी का यह कोट है, उन्नत कान्तिमान।
नाट्यग्रहों अरु लक्ष्मी से अति शोभावान।।21।।

कल्पवृक्ष भूमि (त्रोटक)

यह कल्पतरु भू रम्य अहा, सुर-सरि भवनादिक स्वर्गसमा।
दशभेद अहो तरु-कल्प तले, निजधाम विसरि सब देव रमें।।22।।

मालांग तरु बहु-माल धरे, दीपांग तरु पर दीप जले।
पुष्पों-दीपों की माला से, वन पूज रहा क्या जिनवर को।।23।।

सिद्धार्थ तरु अति दिव्य दिखें, जो मनवांछित फलदायक हैं।
छत्रत्रय शोभित हैं तरु पर, घंटा बाजे अरु फहरे ध्वज।।24।।

इस तरुतल में सिद्धबिम्ब रहे, सुरलोक जहाँ प्रभुभक्ति करे।
कोइ स्तोत्र पढ़े, प्रभु गुण सुमरे, कोइ नम्रपने जिनराज नमे।।25।।

कोइ गान करे कोइ नृत्य करे, निर्मल जल से अभिषेक करे।
कोइ दिव्य दीप अरु धूपों से, अति-भक्ति से जिनराज भजे।।26।।

स्वर्णमयी वेदी (दोहा)

फिर वन-वेदी स्वर्ण की, गोपुरादि संयुक्त।
अति सुन्दर प्रासादमय, भूमि रत्न स्तूप।।27।।

भवन भूमि (चौपई)

स्वर्ण स्तम्भ मणिमय दीवार, चन्द्र समान भवन हैं चार।
देव रमें अरु चर्चा करें, नृत्य करें प्रभु गुण उचरें।।28।।

स्तूप (हरिगीत)

है स्तूप अति ऊँचा मनोहर पद्मराग मणिमय अहा।
अरिहंत प्रभु अरु सिद्ध के बहु-बिम्ब से शोभित महा।।
सुर-असुर मानव भाव-भीने चित्त से पूजा करें।
अभिषेक नमन प्रदक्षिणा कर हर्ष बहु उर में धरें।।29।।

स्फटिक मणिमयी कोट (दोहा)

स्फटिक मणिमय अहो!, सुन्दर अति उत्तंग।
पद्मराग के द्वार हैं, मंगल द्रव्य दिपंत।।30।।
रत्नों की दीवार हैं, रत्नों के स्तम्भ।
है इक योजन व्यास का, उन्नत मण्डप-रत्न।।31।।

श्री मण्डप भूमि बारह सभाएँ (हरिगीत)

शोभित श्री मण्डप अहो! गणधर मुनि अरु आर्यिका।
तिर्यंच सुरगण और मानव की सुशोभित यह सभा।।
मृग-सिंह अरु अहि-मोर भी निज बैर को हैं भूलते।
सब शान्त चित् एकाग्र हो जिन-वचन-अमृत झेलते।।32।।
इस श्री मण्डप में अहो! नित पुष्पवृष्टि सुर करें।
क्या स्फटिक मणिमय गगन में तारे अहो नित नव उगें।।

किरणें रतन-दीवार की जो जल-तरंग समान क्या?
जिनराज के उपदेश का अमृत महोदधि उछलता?।।33।।

गन्धकुटी प्रथम पीठ (हरिगीत)

वैडूर्य रत्नों से बनी यह पीठ पहली शोभती।
वसु द्रव्य मंगल और सोलह सीढ़ियाँ मन मोहतीं।।
यक्ष-गण के शीश पर है धर्मचक्र विराजता।
सहस आरों की प्रभा से सूर्य भी लज्जित हुआ।।34।।

द्वितीय पीठ

उस पीठ पर है पीठ स्वर्णिम अति मनोरम दूसरी।
मन मुग्धकारी पीत ज्योति चहुँ दिशा फैला रही।।
आठ ध्वज सुन्दर मनोहर चिह्न युत लहरा रहे।
सिद्ध प्रभु के गुण समान सुस्वच्छ सुन्दर शोभते।।35।।

तृतीय पीठ

विविध रत्नों से बनी यह पीठ मनहर तीसरी।
विविध रंगमयी सुरम्य प्रकाश यह फैला रही।।
दैवी सुमन हैं हँस रहे वसु द्रव्य मंगल शोभते।
चारों निकायों के अमर इस पीठ की पूजा करें।।36।।

(वीरछन्द)

गन्ध कुटी शोभे अति सुरभित पुष्प धूप की सौरभ से।
मोती की मालाएँ लटके नभ को रंगे रत्नद्युति से।।
रत्नमयी शिखरों पर मनहर लाखों ध्वज लहराते हैं।
सुन्दरता की अधिदेवी में जग वैभव झलकाते हैं।।37।।

(हरिगीत)

देवोपनीत सहस्रदल युत कमल जिस पर खिल रहा।
सुर-असुर और मनुष्य का मन मुग्ध अतिशय हो रहा।।38।।

जिनेन्द्र दर्शन (त्रोटक)

चतुरांगुल उपर जिन शोभें, नर-इन्द्र सुरेन्द्र मुनीश जजें।
निर-आलम्बी जैसा आतम, बिन आलम्बी वैसा जिन-तन।।39।।

चँवर एवं छत्र प्रातिहार्य (हरिगीत)

क्षीर-अमृत तुल्य उज्ज्वल चँवर चौंसठ जिन ढुरें।
मानो समुद्र तरंग, गिरि-निर्झर प्रभु सेवन करें।।
त्रय छत्र शोभें शीश पर जिन सुयश मूर्तिमन्त ज्यों।
मौक्तिक प्रभा है चन्द्र-सम रत्नांशु रवि भासित अहो।।40।।

अशोक वृक्ष प्रातिहार्य (हरिगीत)

योजन विशाल अशोक तरुवर शोक तिमिर निवारता।
मणि स्कन्ध मणिमय पत्र अरु मणिपुष्प से शोभित अहा।।
झूलती बहु शाख अरु अलिगण मधुर गुंजन करें।
क्या वृक्ष हाथ हिला-हिला कर भक्ति से जिनवर भजें।।41।।

(त्रोटक)

चहुँ दिशि जिनवर के मुख दिखते, अशुचि नहीं दिव्य शरीर विषें।
नहिं रोग क्षुधा न जरा तन में, न निमेष अहो नयनाम्बुज में।।42।।
मणिपुंज सुधारस अरु शशि से, जिन-तन सुन्दरता अधिक लसे।
अति सौम्य प्रसन्न मुखाम्बुज में, भवि-नेत्र-अलि अति लीन हुए।।43।।

भामण्डल प्रातिहार्य

जिन-देह दिवाकर तेज विषें, रवि-शशि तारों का तेज छिपे।
रविबिंब प्रभा से अधिक कान्ति, श्री जिनवर के भामंडल की।।44।।

सुर-असुर तथा मानव निरखें, स्व-भवान्तर सात प्रमोद धरें।
जिनदेह प्रभा अति पावन में, जग के बहुमंगल दर्पण में।।45।।

दिव्यध्वनि देव-दुन्दुभि एवं पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य

घन-गर्जन वत् जिनवाणी झरे, भवि चित्त-चकोर सुनृत्य करे।
सुर दुन्दुभि वाद्य बजें नभ में, हो पुष्प-वृष्टि बहु-योजन में।।46।।

दिव्य ध्वनि महिमा

कर्णप्रिय प्रभु की ध्वनि सुनकर, गंभीर अहो! विस्मित गणधर।
ध्वनि वेग बहे भवि चित भींजे, शुचि ज्ञान झरे भवताप बुझे।।47।।
दिव्यध्वनि अक्षर एक भले, बहुरूप बने सब जीव सुनें।
जैसे निर्मल जल एक भले, तरु भेदों से बहु भेद लहे।।48।।

दिव्यध्वनि श्रमण का फल

वाणी सुनकर बहु ज्ञानी बनें, अणुव्रतधारी, निर्ग्रन्थ बनें।
निर्ग्रन्थ मुनी जिनध्वनि सुनकर, निज अनुभव धार अखंड करें।।49।।

सर्वज्ञता और वीतरागता का वर्णन (हरिगीत)

मोह का अंकुर अहो! नहिं शेष रहता है जहाँ।
अज्ञान का भी अंश जलकर भस्मरूप हुआ वहाँ।।
निज दर्श आनन्द ज्ञान बल प्रकटे अनन्त अहो जहाँ।
जिनराज के पद-पंकजों में, स्थान मेरा हो वहाँ।।50।।

जिस व्योम में परमाणुवत् लघु यह जगत है भासता।
प्रकटा जहाँ परिपूर्ण ज्ञान-अनन्त लोकालोक का।।
त्रय-काल की पर्याय युत सब द्रव्य को युगपत् लखे।
अति नम्र होकर जिन-चरण में शीश यह मेरा झुके।।51।।

देवोपुनीत समवसरण से राग नहिं किंचित् अहा।
मलिन रजकण के प्रति नहिं द्वेष किंचित् भी रहा।।
समवसरण अरु धूल जिसमें ज्ञेय केवल हैं अहो।
जिनराज जी! उस ज्ञान को मम वन्दना शतबार हो।।52।।

शत इन्द्रगण निज शीश धरते तुम चरण में हो भले।
इन्द्राणियाँ स्वस्तिक करती हों रतन-रज से भले।।
पर आपकी परिणति नहीं इन ज्ञेय के सम्मुख जरा।
निजरूप में डूबे हुए हो नमन तुमको जिनवरा।।53।।

जिनेन्द्र स्तवन

जग के अगाध तिमिर विनाशक सूर्य तुम ही हो प्रभो।
अज्ञान से अंधे जगत के नेत्र तुम ही हो विभो।।
भव-जलधि में डूबे जनों की नाव भी तुम ही अहो।
माता-पिता अरु गुरु सब कुछ हे जिनेश्वर! आप हो।।54।।

तीर्थ-कर्ता हे प्रभो! तुम जगत में जयवन्त हो।
ओंकारमय वाणी तुम्हारी जगत में जयवन्त हो।।
समवसरण जिनेन्द्र के सब जगत में जयवन्त हों।
अरु चार तीर्थ सदा जगत में भी अहो जयवन्त हों।।55।।

(दोहा)

समवशरण का शास्त्र में, वर्णन किया विशाल।
किन्तु कहा उस जलधि का, बिन्दु मात्र कुछ हाल।।56।।

बिन देखे समझें नहीं यह जिनवर का गेह।
भाग्य नहीं है भरत का बड़भागी क्षेत्र विदेह।।57।।

जिनागम की महिमा (हरिगीत)

समवसरण जिनेन्द्र का हो यहाँ, नहिं यह भाग्य है।
साक्षात् जिनध्वनि का श्रवण भी हो, न ऐसा भाग्य है।।
तो भी सीमन्धर नाथ एवं वीर मंगल-ध्वनि की।
सुनी जाती गूँज है जिन आगमों में आज भी।।58।।

आश्चर्य जनक घटना (दोहा)

विक्रम शक प्रारम्भ में, घटना इक सुखदायी।
जिससे ध्वनि विदेह की, भरत क्षेत्र में आई।।59।।

आचार्य कुन्दकुन्द को साक्षात् तीर्थंकर की विरह वेदना

(हरिगीत)

बहु ऋद्धिधारी कुन्दकुन्द मुनि हुए इस काल में।
श्रुतज्ञान में जो कुशल अरु अध्यात्मरत योगीश थे।।
साक्षात् श्री जिन-विरह की हुइ वेदना आचार्य को।
हा!हा! सीमन्धरनाथ का नहिं दरश है इस क्षेत्र को।।60।।

विदेह गमन (वीरछन्द)

अरे! अचानक बोल उठे 'सत् धर्मवृद्धि हो' श्री जिनराज।
सीमंधर जिन समवसरण में अर्थ न समझी सकल समाज।।
सन्धिविहीन ध्वनि सुनकर उस परिषद को आश्चर्य हुआ।
और दिखे तत्काल महामुनि मूर्तिमन्त अध्यात्म समान।।61।।

हाथ जोड़कर खड़े प्रभु को नमें भक्ति में लीन हुए।
नग्न दिगम्बर छोटा-सा तन विस्मित थे सब लोग हुए।।
विस्मय से चक्री पूछें हे नाथ! कहो ये कौन महान।
हैं समर्थ आचार्य भरत के करें धर्म की वृद्धि महान।।62।।

(दोहा)

जिनवर की यह बात सुन, हर्षित सकल समाज।
ऐलाचार्य सभी कहें, छोटे-से मुनिराज।।63।।

भरत क्षेत्र में पुनरागमन (हरिगीत)

प्रत्यक्ष जिनवर दर्श कर बहु हर्ष ऐलाचार्य को।
ॐकार ध्वनि सुनकर अहो अमृत मिला मुनिराज को।।
सप्ताह एक ध्वनि सुनी श्रुतकेवली परिचय किया।
शंका निवारण सभी कर फिर भरत पुनरागम हुआ।।64।।

आचार्य कुन्दकुन्द की महिमा (रोला)

गुरु-परम्परा से जो वीर-ध्वनि है पाई।
जा विदेह दिव्यध्वनि झेली खुद भी भाई।।
मुनिवर ने है वही लिखा इन परमागम में।
कुन्दकुन्द का अति उपकार भरत-भूतल में।।65।।

हो सुपुत्र तुम भरत क्षेत्र के अन्तिम जिन के।
महाभक्त हो क्षेत्र विदेह प्रथम जिनवर के।।
हो सुमित्र भव में भूले हम भव्य जनों के।
कुन्दकुन्द को बार-बार वन्दन हम करते।।66।।

तीर्थंकर देव, जिनवाणी, आचार्य कुन्दकुन्द एवं पूज्य गुरुदेवश्री का उपकारोल्लेख (दोहा)

नमूँ तीर्थ-नायक प्रभो!, वन्दूँ ध्वनि ॐकार।
कुन्दकुन्द मुनि को नमूँ, जिन झेला ॐकार।।67।।

जिनवर-ध्वनि, मुनि कुन्द का, है उपकार महान।
कुन्द-ध्वनि दातार जो, उपकारी गुरु कहान।।68।।

*****

समयसार जयवन्त रहो...

वीर-जिनेश्वर गौतम-गुरु मुनि-कुन्दकुन्द को नमन करूँ।
आत्मख्याति दाता मुनि-अमृतचन्द्र और जयसेन नमूँ।।
नव-तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य ज्योति है प्रकट अहो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।1।।

जो अप्रमत्त प्रमत्त नहीं है शाश्वत चेतन ज्ञायक भाव।
जिसको कभी न छू सकते वर्णादि और रागादि विभाव।।
अत: नहीं रागादि विभावों का कर्ता चैतन्य अहो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।2।।

लौह शृंखला अशुभभाव तो स्वर्ण शृंखला है शुभभाव।
दोनों ही हैं बंध हेतु, नहिं चेतन में उनका सद्भाव।।
जो चहुँगति में भ्रमण कराये कैसे उसे सुशील कहो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।3।।

द्रव्यास्रव से स्वत: भिन्न अरु भावास्रव का हुआ अभाव।
ज्ञानी सदा निरास्रव रहते रहे ज्ञानमय ज्ञायक भाव।।
यहाँ यही तात्पर्य कहा है सदा शुद्धनय ग्रहण करो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।4।।

आत्मतत्त्व की उपलब्धि से होता है संवर साक्षात्।
आत्म प्राप्त हो भेदज्ञान से अत: उसे ही करना प्राप्त।।
भेदज्ञान के उद्यम से ही शुद्ध तत्त्व उपलब्ध अहो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।5।।

ज्ञान-विराग शक्ति से ज्ञानी यद्यपि करें विषय-सेवन।
सेवक, किंतु असेवक जानो क्योंकि न भोगें उनका फल।।

विपदाओं के लिए अपद जो वही एक पद स्वाद्य अहो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।6।।

जब उपयोग और रागादिक एक रूप भासित होते।
निश्चय से बस इसी हेतु से पुरुष कर्म से हैं बँधते।।
किंतु अरे स्वच्छन्द प्रवर्तन कर्म-बंध का कारण हो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।7।।

प्रज्ञाछैनी द्वारा जो जन, जीव-बंध को भिन्न लखे।
सावधान होकर पैनी प्रज्ञा-छैनी ज्ञानी पटके।।
सहज परम आनंदरूप रसयुक्त परम उत्कृष्ट अहो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।8।।

कर्ता-भोक्ता भावों का जो भले प्रकार विनाश करे।
बंध-मोक्ष की रचना से भी कदम-कदम पर दूर रहे।।
शुद्ध-शुद्ध जो निर्मल निश्चल निज रस से भरपूर अहो।
अद्वितीय यह जगत-चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो।।9।।

*****

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

संख्य-असंख्य जन्म धारण कर भवसागर को पार करें।
जो नर सम्यग्दर्शन धारें वे समस्त दुःख नाश करें।।

जो अन्तर्मुहूर्त मात्र भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करें।
यदि च्युत हो समकित से तो भी नहिं अनन्त संसार भ्रमे।।

– भगवती आराधना, छन्द 55-56

चैतन्य वन्दना

जिन्हें मोह भी जीत न पाये, वे परिणति को पावन करते।
प्रिय के प्रिय भी प्रिय होते हैं, हम उनका अभिनन्दन करते।।
जिस मंगल अभिराम भवन में, शाश्वत सुख का अनुभव होता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुख हर लेता।।1।।

जिसके अनुशासन में रहकर, परिणति अपने प्रिय को वरती।
जिसे समर्पित होकर शाश्वत ध्रुव सत्ता का अनुभव करती।।
जिसकी दिव्य-ज्योति में चिर-संचित अज्ञान-तिमिर घुल जाता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुख हर लेता।।2।।

जिस चैतन्य महा-हिमगिरि से परिणति के घन टकराते हैं।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रस की, मूसलधारा बरसाते हैं।।
जो अपने आश्रित परिणति को, रत्नत्रय की निधियाँ देता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुख हर लेता।।3।।

जिसका चिन्तन-मात्र असंख्य प्रदेशों को रोमांचित करता।
मोह-उदयवश जड़वत् परिणति में अद्भुत चेतन रस भरता।।
जिसकी ध्यान-अग्नि में चिर-संचित कर्मों का कल्मष जलता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुख हर लेता।।4।।

*****

ज्ञानी की विशुद्ध मति

यह निर्ग्रन्थ रत्नत्रय ही सर्वोत्कृष्ट एवं परिशुद्ध।
अतः मुक्ति का मार्ग यही है करना ऐसी मति सुविशुद्ध।।

– भगवती आराधना, छन्द 43

परमानन्द स्तोत्र

(दोहा)

परमानन्द स्वरूप जो, निर्विकार बिन रोग।
ध्यानहीन नहिं देखते, देह-स्थित निजरूप।।1।।

ध्यानामृत सागर अहो, सुख अनन्त सम्पन्न।
बल अनन्तमय है सदा, दर्शनीय परमात्म।।2।।

निर्विकार निर्बाध है, सर्व संग से शून्य।
चेतन लक्षण शुद्ध है, परमानन्द स्वरूप।।3।।

उत्तम चिन्ता आत्म की, मध्यम पर-उपकार।
अधम काम चिन्ता कही, अधमाधम पर-भार।।4।।

निर्विकल्पता से हुआ, ज्ञानामृत उत्पन्न।
भर विवेक अंजुलि अहो, पीते ज्ञानी सन्त।।5।।

जीव सदा आनन्दमय, जो जाने वह ज्ञानि।
परमानन्द पिपासु वह, सेवे सदा निजात्म।।6।।

कमल-पत्र पर नीर ज्यों, रहे सर्वदा भिन्न।
वैसे यह शुद्धात्मा, रहे देह में भिन्न।।7।।

द्रव्यकर्म-मल से रहित, भावकर्म से शून्य।
निश्चय से यह आत्मा, है नोकर्म विहीन।।8।।

निज घट में यह आत्मा, वर्ते ब्रह्मानन्द।
ध्यानहीन नहिं देखते, जैसे रवि जन्मान्ध।।9।।

भव्य-जीव ध्याते सदा, चित को कर एकाग्र।
तत्क्षण ही अनुभव करें, चमत्कार निज आत्म।।10।।

ध्यानशील मुनि नियम से, होते दुख से मुक्त।
लहें शीघ्र परमात्म पद, क्षण में होते मुक्त।।11।।

आनन्दमय परमात्म में, नहिं संकल्प-विकल्प।
बसते सदा स्वभाव में, योगी जानें तत्त्व।।12।।

निराकार नीरोग है, चिदानन्दमय शुद्ध।
सर्व परिग्रह से रहित, सुख अनन्त सम्पन्न।।13।।

संशय नहिं यह आत्मा, निश्चय लोक प्रमाण।
सब प्रमाण व्यवहार से, कहते श्री जिनराज।।14।।

निर्विकल्प अनुभूति से, जिस क्षण देखे शुद्ध।
स्वस्थ चित्त होकर सुथिर, विभ्रम होता नष्ट।।15।।

परम ब्रह्म वह ही अहो, जिन-पुंगव वह आत्म।
परम तत्त्व भी है वही, वही परम गुरु आत्म।।16।।

वही सर्व कल्याणमय, वह ही तप उत्कृष्ट।
परम ध्यान भी है वही, वह ही है परमात्म।।17।।

वही सर्व कल्याणमय, वही परम सुख पात्र।
वही शुद्ध चिद्रूपमय, वही परम शिव आप्त।।18।।

वही परम आनन्दमय, वह सुखदायक सार।
वही परम चैतन्यमय, वह ही गुण भंडार।।19।।

परमाह्लाद स्वरूप जो, राग-द्वेष से शून्य।
पण्डित वह जो जानता, देह स्थित अरहंत।।20।।

निराकार निर्लेप हैं, निवसें नित्य स्वरूप।
निर्विकार निर्मल अहो, सिद्ध अष्टगुण युक्त।।21।।

उत्तम गुण प्राप्त्यर्थ जो, सिद्ध समान निजात्म।
पण्डित वह जो जानता, सहजानन्द चिदात्म।।22।।

यथा स्वर्ण पाषाण में, और दूध में घीव।
तिल में रहता तेल ज्यों, तन में रहता जीव।।23।।

शक्तिरूप में वर्तती, ज्यों ईंधन में अग्नि।
वैसे तन में आत्मा, जो जाने पण्डित।।24।।

*****

स्वरूप सम्बोधन स्तोत्र

(दोहा)

मुक्त-अमुक्त स्वरूप जो, सकल कर्ममल शून्य।
ज्ञान-मूर्ति अक्षय अहो, नमन करूँ परमात्म।।1।।

आतम कारणरूप है, ज्ञान-दर्शमय कार्य।
ग्राह्य-अग्राह्य स्वरूप है, व्ययोत्पाद अरु ध्रौव्य।।2।।

दर्शन-ज्ञान स्वरूप से, कहते चेतन रूप।
धर्म प्रमेयत्वादि से, कहें अचेतनरूप।।3।।

है अभिन्न यह ज्ञान से, और कथंचित् भिन्न।
पूर्वापर सब ज्ञानमय, ही कहते हैं आत्म।।4।।

ज्ञानमात्र अरु देहमय है, अरु नहिं यह आत्म।
कहें सर्वगत भी अहो, सर्वथा न जग व्यापि।।5।।

नाना ज्ञानस्वभाव से, है अनेक, नहिं एक।
चेतन एक स्वभाव से, जानो एक-अनेक।।6।।

कथन योग्य निजरूप से, अवक्तव्य पररूप।
अतः अवाच्य न सर्वथा, नहिं वक्तव्य अरूप।।7।।

स्व-पर धर्म से जो अहो, अस्ति-नास्ति स्वरूप।
ज्ञान-मूर्ति यह आत्मा, नहिं मूर्तिक जड़रूप।।8।।

इत्यादिक बहु धर्म है, बन्ध मोक्ष फलदाय।
उन-उन कारण से स्वयं, जीव करे स्वीकार।।9।।

जो कर्ता है कर्म का, वह भोगे फल-कर्म।
अन्तर-बाह्य उपाय से, वही मुक्त निष्कर्म।।10।।

दर्श ज्ञान चारित्र ही, आत्म-प्राप्ति का मार्ग।
तत्त्व-प्रतीति यथार्थ को, कहते सम्यग्दर्श।।11।।

वस्तु-स्वरूप यथार्थ का, निर्णय सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर प्रकाशक, कथंचित्-भिन्न प्रमिति से ज्ञान।।12।।

दर्शन ज्ञान स्वभाव में, लीन रहे परिणाम।
सुख-दुख में समभावमय, सम्यक्चारित्र नाम।।13।।

अथवा यह दृढ़ भावना, है चारित्र विशेष।
ज्ञाता दृष्टा एक मैं, सुख-दुख भोगूँ एक।।14।।

दर्श-ज्ञान-चारित्र हैं, मोक्ष प्राप्ति के हेतु।
बाह्य क्षेत्र अरु काल तप, हैं सहकारी हेतु।।15।।

यथाशक्ति सुख-दुक्ख में, वर्ते तत्त्वविचार।
भाऊँ निज शुद्धात्मा, नहिं रागादि विकार।।16।।

जैसे नीले वस्त्र में, चढ़े न केसर रंग।
नहीं तत्त्व का ग्रहण हो, यदि कषाय मन रंग।।17।।

अतः दोष से मुक्ति के लिए विनाशो मोह।
उदासीन हो जगत से, तत्त्व-विचार करो।।18।।

हेय-ग्राह्य को जानकर, करो हेय का त्याग।
निरालम्ब होकर लहो, ग्राह्य-तत्त्व आधार।।19।।

निज-पर वस्तुस्वरूप का, चिन्तन करो यथार्थ।
उदासीनता वृद्धि से, करो मोक्ष-पद प्राप्त।।20।।

जिसे न इच्छा मोक्ष की भी, वह शिवपुर जाय।
अतः हितैषी भव्य-जन, करें न कुछ भी चाह।।21।।

यदि सोचो! इच्छा सुलभ, क्योंकि आत्माधीन।
क्यों न करो पुरुषार्थ फिर, सुख भी आत्माधीन।।22।।

अतः स्व-पर को जानकर, तजो जगत का मोह।
स्व-संवेद्य आकुल-रहित, निज में ही थिर होय।।23।।

स्वयं स्वयं से स्वयं के लिए स्वयं आधार।
निज को ध्याकर पीजिए, परमानन्द रसधार।।24।।

निज स्वरूप संबोधते हैं ये पच्चीस छन्द।
पढ़े सुने अरु आदरे, भोगे परमानन्द।।25।।

*****

ज्ञान-सिन्धु भगवान आत्मा...

ज्ञान-सिन्धु भगवान आत्मा प्रकट हुआ सर्वांग अहो!
डुबा दिया है मोह सहित विभ्रम की आड़ी चादर को।।
एक साथ सब जीव लोक के शान्त सिन्धु में मग्न रहें।
अहो शान्त रस की लहरें सम्पूर्ण लोक तक जा उछलें।।
– समयसार, कलश 32

तत्त्वार्थ सूत्र

मंगलाचरण

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये।।1।।

(हरिगीतिका)

हे मुक्ति-पथ नायक महा, तुम जानते सब सृष्टि को।
हे कर्म-गिरि भेदक नमूँ मैं, तव गुणों की प्राप्ति हो।।

अध्याय-1

जीव तत्त्व के अन्तर्गत मतिज्ञान आदि पाँच ज्ञानों का संक्षिप्त वर्णन

(1-5)

मोक्षमार्ग, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, सात तत्त्व एवं चार निक्षेपों के नाम

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि-मोक्षमार्गः।।1।।
तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।2।। तन्निसर्गादधिगमाद्वा।।3।।
जीवाजीवास्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्।।4।।
नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः।।5।।

(वीरछन्द)

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणमय एक मात्र शिवपुर का पंथ।
तत्त्वार्थों की श्रद्धा समकित अधिगम से या होय स्वयं।।
जीव अजीव आस्रव बन्ध-रु संवर निर्जर मोक्ष सुतत्त्व।
नाम स्थापन द्रव्य भाव ये चार प्रकार कहे निक्षेप।।1।।

(6–8)

तत्त्वार्थों के जानने के विभिन्न उपाय

प्रमाणनयैरधिगम:।।6।।

निर्देश–स्वामित्व–साधनाधिकरण–स्थिति–विधानत:।।7।।

सत्संख्या–क्षेत्र–स्पर्शन–कालान्तर–भावाल्पबहुत्वैश्च।।8।।

नय–प्रमाण एवं निर्देश तथा स्वामित्व–रु साधन से ।
काल और आधार तथा भेदों से ये जाने जाते।।
सत् संख्या अरु क्षेत्र स्पर्शन काल और अन्तर से जान।
भाव और हीनाधिकता से होता है तत्त्वों का ज्ञान।।2।।

(9–14)

प्रमाण ज्ञान के भेद, मतिज्ञान के नामान्तर एवं निमित्त का कथन

मति–श्रुतावधि–मन:पर्यय–केवलानि ज्ञानम्।।9।।

तत्प्रमाणे।।10।। आद्ये परोक्षम्।।11।। प्रत्यक्षमन्यत्।।12।।

मति: स्मृति: संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।।13।।

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्।।14।।

मति–श्रुत–अवधि–मन:पर्यय अरु केवल – ये हैं ज्ञान प्रमाण।
मति–श्रुत उभय परोक्ष ज्ञान हैं, शेष तीन प्रत्यक्ष सुजान।।
मति–स्मृति–संज्ञा–चिन्ता अरु अभिनिबोध जानो मतिज्ञान।
मन अरु इन्द्रिय के निमित्त से भी हो जाता है मतिज्ञान।।3।।

(15–19)

मतिज्ञान की उत्पत्ति, विषय और भेदों का वर्णन

अवग्रहेहावाय–धारणा:।।15।।

बहु–बहुविध–क्षिप्रानि:सृतानुक्त–ध्रुवाणां सेतराणाम्।।16।।

अर्थस्य।।17।। व्यञ्जनस्यावग्रह:।।18।।

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्।।19।।

अवग्रह ईहा अवाय धारणा – इस क्रम से होता मतिज्ञान।
बहु बहुविध अरु शीघ्र अप्रकट अकथित ध्रुव छह भेद सुजान।।
इन सबके प्रतिपक्ष स्वरूपी सब मिल बारह भेद जु अर्थ।
अस्पष्ट का मात्र अवग्रह, चक्षु और मन से नहिं ज्ञात।।4।।

(20–23)

श्रुतज्ञान की उत्पत्ति और भेद तथा अवधि और मनःपर्ययज्ञान के भेद

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेक–द्वादशभेदम्।।20।।

भवप्रत्ययोऽवधिर्देव–नारकाणाम्।।21।।

क्षयोपशम–निमित्त: षड्विकल्प: शेषाणाम्।।22।।

ऋजु–विपुलमती मन:पर्यय:।।23।।

मतिपूर्वक ही श्रुत होता है, दो अनेक अरु बारह भेद।
सुर–नारक के अवधिज्ञान में, भव ही कारण कहें जिनेश।।
नर–पशुओं को क्षयोपशम से, होता है छह भेदों युक्त।
ऋजुमति और विपुलमति दो हैं, मनपर्यय के भेद सुयुक्त।।5।।

(24–28)

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में विशेषता तथा मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान के विषय

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष:।।24।।

विशुद्धि–क्षेत्र–स्वामि–विषयेभ्योऽवधि–मन:पर्यययो:।।25।।

मति–श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु।।26।।

रूपिष्ववधे:।।27।।

तदनन्तभागे मन:पर्ययस्य।।28।।

सुविशुद्धि अरु अप्रतिपाती से विशेषता है इनमें।
क्षेत्र विशुद्धि स्वामी अरु विषय अपेक्षा भिन्न कहे दोनों।।
कुछ पर्यायों सहित सभी द्रव्यों को जाने मति-श्रुतज्ञान।
अवधिज्ञान रूपी को जाने भाग अनन्ता चौथा ज्ञान।।6।।

(29-32)

केवलज्ञान का विषय, एक साथ होनेवाले ज्ञानों का नियम तथा मिथ्याज्ञान का वर्णन

सर्वद्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य।।29।।
एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।।30।।
मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च।।31।।
सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्।।32।।

सकल द्रव्य-गुण-पर्यायों को विषय बनाता केवलज्ञान।
एक जीव को एक साथ हो सकें एक दो त्रय चउ ज्ञान।।
मति-श्रुत-अवधि विपर्यय भी हों मानें असत् और सत् एक।
मनमानी से ग्रहण करें उन्मत्त समान लहें बहु खेद।।7।।

(33)

नैगमादि सप्त नयों के नाम

नैगम-संग्रह-व्यवहारर्जुसूत्र-शब्द-समभिरूढैवंभूता नयाः।।33।।

(हरिगीत)

नैगम तथा संग्रह सहित व्यवहार अरु ऋजुसूत्र नय।
शब्द समभिरूढ़ एवंभूत जानो सप्त नय।।8।।

।।इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।।

अध्याय-2

जीव के पाँच भाव तथा जन्मस्थान आदि का वर्णन

(1-4)

जीव के पाँच भाव एवं प्रथम दो भावों के भेदों के नाम

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च।।1।। द्वि-नवाष्टादशैकविंशति-त्रिभेदाः यथाक्रमम्।।2।। सम्यक्त्व-चारित्रे।।3।। ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च।।4।।

उपशम क्षायिक मिश्र और औदयिक पारिणामिक निज भाव।
क्रमशः दो नौ भेद अठारह एकबीस त्रय चेतन भाव।।
उपशम के समकित चारित द्वय क्षायिक के हैं दर्शन ज्ञान-
दान लाभ भोगोपभोग बल समकित चारित भेद सुजान।।1।।

(5-6)

क्षायोपशमिक और औदयिक भाव के भेदों के नाम

ज्ञानाज्ञान-दर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रि-त्रि-पंचभेदाः सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च।।5।।
गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध-लेश्याश्चतु-श्चतुस्त्र्येकैकैकैक-षड्भेदाः।।6।।

ज्ञान चार अज्ञान तीन त्रय दर्शन और लब्धियाँ पाँच।
समकित चारित और संयमासंयम भाव क्षयोपशम जान।।
गति कषाय लिंग चार चार त्रय मिथ्यादर्शन इक अज्ञान।
एक असंयम असिद्धत्व लेश्या छह उदयिक इक्किस मान।।2।।

(7-13)

पारिणामिक भाव के भेद तथा जीव का लक्षण और भेद-प्रभेद

जीवभव्याभव्यत्वानि च।।7।। उपयोगो लक्षणम्।।8।।

स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः।।9।। संसारिणो मुक्ताश्च।।10।।
समनस्काऽमनस्काः।।11।। संसारिणस्त्रस-स्थावराः।।12।।
पृथिव्यप्तेजो-वायु-वनस्पतयः स्थावराः।।13।।

भव्य अभव्य तथा जीवत्व भेद पारिणामिक के तीन।
दर्शन-ज्ञान जीव का लक्षण चार-आठ हैं भेद सही।।
संसारी अरु मुक्तजीव हैं संसारी मन सहित-अमन।
संसारी त्रस, थावर-भू जल अग्नि वनस्पति और पवन।।3।।

(14-19)

त्रसजीव एवं इन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का कथन

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः।।14।। पंचेन्द्रियाणि।।15।। द्विविधानि।।16।।
निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्।।17।। लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्।।18।।
स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि।।19।।

दो त्रय चार पाँच इन्द्रिययुत त्रस हैं, इन्द्रिय होती पाँच।
दो प्रकार की हैं, द्रव्येन्द्रिय, निर्वृत्ति और उपकरण सुजान।
लब्धि और उपयोग जानिये भावेन्द्रिय के भेद अहो।
पर्शन रसना घ्राण चक्षु अरु श्रोत्र पाँच इन्द्रियाँ कहो।।4।।

(20-25)

इन्द्रियों के विषय, स्वामी तथा विग्रहगति का उल्लेख

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः।।20।।
श्रुतमनिन्द्रियस्य।।21।। वनस्पत्यन्तानामेकम्।।22।।
कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि।।23।।
संज्ञिनः समनस्काः।।24।। विग्रहगतौ कर्मयोगः।।25।।

फरस तथा रस गन्ध वर्ण अरु शब्द विषय हैं इन्द्रिय के।
श्रुत को विषय बनाता है मन थावर की हैं इन्द्रिय एक।।
एक-एक इन्द्रिय बढ़ती कृमि चींटी भँवरा मनुजों में।
संज्ञी हैं मन सहित और हो कर्म योग विग्रह गति में।।5।।

(26-31)

जीवों की गति अनाहारकत्व एवं जन्म के भेदों का कथन

अनुश्रेणि गतिः।।26।। अविग्रहा जीवस्य।।27।।
विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः।।28।।
एक समयाऽविग्रहा।।29।। एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः।।30।।
सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म।।31।।

नभ प्रदेश श्रेणी में गति हो मुक्त जीव की सरल गति।
संसारी की वक्र, सरल भी, चार समय के पूर्व कही।
एक समय में सरल गति है इक दो त्रय तक अनहारी।
सम्मूर्च्छन अरु गर्भ तथा उपपाद जन्म लें संसारी।।6।।

(32-36)

जीवों की योनि, जन्म प्रक्रिया एवं शरीर के भेदों का कथन

सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः।।32।।
जरायुजाण्डज-पोतानां गर्भः।।33।। देव-नारकाणामुपपादः।।34।।
शेषाणां सम्मूर्च्छनम्।।35।।
औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि।।36।।

शीत-सचित्त-ढँकी, अरु इनसे इतर, मिश्र नौ योनि कही।
अण्डज पोत जरायुज - ये सब जीव जन्मते गर्भ सहित।
सुर-नारक उपपाद जन्म लें सम्मूर्च्छन हैं शेष सभी।
औदारिक वैक्रिय आहारक तैजस अरु कार्माण शरीर।।7।।

(37-43)

शरीरों की सूक्ष्मता एवं एक साथ होने का नियम

परं परं सूक्ष्मम्।।37।। प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात्।।38।।
अनन्तगुणे परे।।39।। अप्रतीघाते।।40।।
अनादिसम्बन्धे च।।41।। सर्वस्य।।42।।

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।।43।।

क्रमशः अधिक सूक्ष्म हैं सब तन, प्रदेश असंख्यगुणे तन तीन।
अन्तिम दो तन के प्रदेश अनन्त गुणे अप्रतिघाती।।
हैं अनादि से ये दोनों तन सभी जीव के रहते संग।
कम से कम ये दो तन और अधिकतम चार रहें इक संग।।8।।

(44-49)

शरीरों की विशेषता एवं स्वामित्व का वर्णन

निरुपभोगमन्त्यम्।।44।। गर्भ-सम्मूर्च्छनजमाद्यम्।।45।।
औपपादिकं वैक्रियिकम्।।46।। लब्धि-प्रत्ययं च।।47।।
तैजसमपि।।48।। शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव।।49।।

निरुपभोग है अन्तिम तन गर्भज सम्मूर्च्छन को पहला।
उपपाद जन्म में वैक्रिय तन, यह लब्धि विशेष से भी होता।।
तैजस भी लब्धि से होता आहारक शुभ और विशुद्ध।
होता है प्रमत्त संयत मुनिवर को यह व्याघात रहित।।9।।

(50-53)

तीनों वेदों के स्वामी और अनपवर्त्य आयु वाले जीवों का वर्णन

नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि।।50।।
न देवाः।।51।। शेषास्त्रिवेदाः।।52।।
औपपादिक-चरमोत्तमदेहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।।53।।

(हरिगीतिका)

नारकी - सम्मूर्च्छन होते नपुंसक, सुर नहीं।
शेष सबको तीन लिंग हो सकें कहते जिन यही।।
औपपादिक, चरम-उत्तम तन, असंख्यों वर्ष की।
हो आयु जिनकी उन्हें अपवर्तन नहीं होता कभी।।10।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।।

अध्याय-3

अधोलोक एवं मध्यलोक का परिचय

(1-2)

सात नरकों के नाम एवं बिलों की संख्या

रत्न-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो-महातमःप्रभा भूमयो घनाम्बु-वाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः।।1।।
तासु त्रिंशत्पञ्चविंशति-पञ्चदश-दश-त्रि-पञ्चोनैक- नरक-शत-सहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम्।।2।।

रत्न शर्करा बालु पंक अरु धूमप्रभा तम महातमा।
घन अम्बु तनु-वात वलय नीचे-नीचे भू सप्त कहा।।
तीस पचीस पन्द्रह, दस अरु तीन लाख बिल पंचम तक।
छठवें में कम पाँच लाख इक, सप्तम में बिल पाँच निरख।।1।।

(3-9)

नारकियों की उत्कृष्ट आयु और मध्यलोक का वर्णन

नारका नित्याशुभतरलेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः।।3।।
परस्परोदीरित-दुःखाः।।4।। संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः।।5।। तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा-स्थितिः।।6।।
जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-समुद्राः।।7।।
द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः।।8।।
तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजन-शत-सहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः।।9।।

-नित्य अशुभतर लेश्या अरु परिणाम देह वेदना अहो।
तथा विक्रिया इनकी होती दुख दें एक दूसरे को।।
तीजे तक इनको दुख देते असुर कुमार महासंक्लिष्ट।
एक तीन अरु सात तथा दस सत्रह अरु बाइस तेतीस।।2।।

-सागर नारकियों की आयु कही जिनागम में उत्कृष्ट।
मध्य लोक में जम्बू लवणोदधि आदि शुभ द्वीप समुद्र -
पूर्व पूर्व को घेर रहे दूने विस्तृत चूड़ीवत् जान।
सब द्वीपों के बीच लाख योजन का मेरु नाभि समान।।3।।

(10-11)

जम्बूद्वीप के सात क्षेत्र और छह पर्वतों के नाम

भरत-हेमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यवतैरावतवर्षा: क्षेत्राणि।।10।।

तद्विभाजिन: पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वता:।।11।।

भरत हैमवत् हरि विदेह रम्यक हैरण्य-रु ऐरावत।
सात क्षेत्र जम्बू सुद्वीप में इन्हें बाँटते छह पर्वत।।
हिमवन तथा महाहिमवन गिरि निषध नील रुक्मि शिखरी।
पूरब से पश्चिम तक फैले सदा सुशोभित उन्नत गिरि।।4।।

(12-13)

छह पर्वतों का स्वरूप

हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममया:।।12।।
मणिविचित्र-पार्श्वा उपरि-मूले च तुल्य-विस्तारा:।।13।।

स्वर्ण रजतमय और तप्त सोने के हैं शोभित गिरि तीन।
नीलमणि चाँदी सोने के शोभित होते हैं गिरि तीन।।
ऊपर नीचे और मध्य में है विस्तार एक जैसा,
सभी पर्वतों का तट चित्र-विचित्र सुशोभित मणियों का।।5।।

(14-17)

छह सरोवरों के नाम एवं पद्म सरोवर का क्षेत्रफल

पद्म-महापद्म-तिगिञ्छ-केसरि-महापुण्डरीक-पुण्डरीका

ह्रदास्तेषामुपरि।।14।।
प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्ध-विष्कम्भो ह्रद:।।15।।
दशयोजनावगाह:।।16।। तन्मध्ये योजनं पुष्करम्।।17।।

पद्म सरोवर महापद्म अरु तिगिंछ केसरी महापुण्डरीक।
पुण्डरीक नामक छह सरवर से शोभित ये छहों गिरि।।
पद्म सरोवर इक सहस्र योजन लम्बा आधा चौड़ा।
दश योजन गहरा है उसके बीच कमल इक योजन का।।6।।

(18-19)

शेष सरोवरों के नाम, कमलों का विस्तार तथा देवियों के नाम

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदा: पुष्कराणि च।।18।।
तन्निवासिन्यो देव्य: श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्य: पल्योपम-स्थितय: ससामानिक-पारिषत्का:।।19।।

शेष सरोवर और कमल हैं दूने-दूने पिछले से।
श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि अरु लक्ष्मी देवी हैं इनमें।।
ये सामानिक और पारिषद देवों के संग रहती हैं।
मात्र एक पल्योपम आयु इनकी कही जिनागम में।।7।।

(20-22)

चौदह नदियों के नाम और उनके बहने की दिशा का वर्णन

गंगा-सिन्धु-रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदा: सरितस्तन्मध्यगा:।।20।।
द्वयोर्द्वयो: पूर्वा: पूर्वगा:।।21।। शेषास्त्वपरगा:।।22।।

गंगा-सिन्धु रोहित-रोहितास्या हरित-हरिकान्ता।
सीता-सीतोदा नारी-नरकान्ता स्वर्ण-रूप्यकूला।।
रक्ता-रक्तोदा ये चौदह नदियाँ बहती सरवर से।
पहली बहती पूर्व दिशा में दूजी बहती पश्चिम में।।8।।

(23-25)

सहायक नदियों का कथन एवं भरत आदि क्षेत्रों का विस्तार

चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गंगा-सिन्ध्वादयो नद्यः।।23।।

भरतः षड्विंशति-पञ्चयोजन-शतविस्तारः षट् चैकोनविंशति-भागा योजनस्य।।24।।

तद्-द्विगुण-द्विगुणविस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः।।25।।

सहस चतुर्दश नदियों से हैं घिरी गंग-सिन्धु नदियाँ।
पाँच शतक छब्बिस योजन अरु उन्नीस में से भाग छठा-
भरत क्षेत्र का इतना है विस्तार वचन जिन आगम का।
क्षेत्र विदेह तक है विस्तार जानिये सब दूना-दूना।।9।।

(26-28)

जम्बूद्वीप का विभाग एवं काल परिवर्तन

उत्तरा दक्षिणतुल्याः।।26।।

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।।27।।

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः।।28।।

उत्तर दक्षिण में क्षेत्रादिक सबका है विस्तार समान।
भरतैरावत में होती है हानि-वृद्धि छह काल सुजान।।
अवसर्पिणि-उत्सर्पिणि कालों द्वारा होता परिर्वतन।
भरतैरावत के अतिरिक्त कहीं नहिं होता परिवर्तन।।10।।

(29-32)

सात क्षेत्रों में जीवों की उत्कृष्ट आयु और जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का विस्तार

एक-द्वि-त्रि-पल्योपमस्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैवकुरवकाः।।29।।

तथोत्तराः।।30।। विदेहेषु संख्येयकालाः।।31।।

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः।।32।।

हैमवतक हरि देवकुरु में इक द्वय त्रय पल्योपम आयु।
हैरण्यवतक रम्यक् उत्तर कुरु में भी इसी तरह की आयु।।
नर-तिर्यंचों की विदेह में आयु वर्ष कही संख्यात।
इक शत नब्बे भाग द्वीप जम्बू का भरतक्षेत्र विस्तार।।11।।

(33-36)

अन्य क्षेत्रों का विस्तार, मनुष्यों की उत्पत्ति एवं भेदों का वर्णन

द्विर्धातकीखण्डे।।33।। पुष्करार्द्धे च।।34।।

प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः।।35।। आर्या म्लेच्छाश्च।।36।।

खण्ड धातकी में सब रचना जम्बूद्वीप से दूनी हैं।
पुष्करार्ध में भी सब रचना जम्बूद्वीप से दूनी हैं।।
मानुषोत्तर के पहले तक ही मानव हो सकते हैं।
आर्य-म्लेच्छ - इन दो रूपों में मनुजों के दो भेद कहे।।12।।

(37-39)

मनुष्य-तिर्यंचों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु का वर्णन

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः।।37।।

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते।।38।।

तिर्यग्योनिजानां च।।39।।

भरतैरावत अरु विदेह में कर्मभूमि पन्द्रह मानो।
देवकुरु-उत्तरकुरु में नहिं कर्मभूमि होती जानो।।
मनुजों की उत्कृष्ट पल्य त्रय आयु जघन अन्तर्मुहुरत।
तिर्यंचों की भी आयु इतनी ही होती मानववत्।।13।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः।।

अध्याय–4

देवगति के जीवों का वर्णन

(1–3)

चार प्रकार के देव, उनके भेद और लेश्या का वर्णन

देवाश्चतुर्णिकाया:।।1।।
आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्या:।।2।।
दशाष्ट–पंच–द्वादशविकल्पा: कल्पोपपन्नपर्यन्ता:।।3।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष अरु कल्पवासि सुर चार प्रकार।
भवनत्रिक में कृष्ण नील कापोत पीत लेश्यायें चार।।
कल्पोपन्न देव तक चारों के दश आठ पाँच बारह।
सभी निकायों के देवों के होते हैं दश भेद प्रवर।।1।।

(4–5)

देवों की विशेष जातियों का कथन

इन्द्र–सामानिक–त्रायस्त्रिंश–पारिषदात्मरक्ष–लोकपालानीक–प्रकीर्णकाभियोग्य–किल्विषिकाश्चैकश:।।4।।
त्रायस्त्रिंश–लोकपाल–वर्ज्या व्यन्तर–ज्योतिष्का:।।5।।

इन्द्र तथा सामानिक त्रायस्त्रिंश अरु भेद पारिषद हैं।
आत्मरक्ष अरु लोकपाल, अनीक प्रकीर्णक भेद कहें।।
आभियोग्य अरु किल्विष ये दश भेद सभी हैं देवों में।
त्रायस्त्रिंश अरु लोकपाल नहिं होते व्यन्तर ज्योतिष में।।2।।

(6–9)

देवों में काम–सेवन का वर्णन

पूर्वयोर्द्वीन्द्रा:।।6।। कायप्रवीचारा आ ऐशानात्।।7।।
शेषा: स्पर्श–रूप–शब्द–मन:–प्रवीचारा:।।8।।
परेऽप्रवीचारा:।।9।।

भवनवासि व्यन्तर में दो दो इन्द्र कहे जिन आगम में।
काया से हो काम–क्रिया ऐशान स्वर्ग तक देवों में।।
शेष सुरों में स्पर्श रूप अरु शब्द तथा मन से होती।
सोलह स्वर्गों से ऊपर नहिं काम क्रिया सुर में होती।।3।।

(10–11)

भवनवासियों के दस और व्यंतरों के आठ प्रकारों का वर्णन

भवनवासिनोऽसुर–नाग–विद्युत्सुपर्णाग्नि–वात–स्तनितोदधि–द्वीप–दिक्कुमारा:।।10।।
व्यन्तरा: किन्नर–किम्पुरुष–महोरग–गन्धर्व–यक्ष–राक्षस–भूत–पिशाचा:।।11।।

भवनवासि में असुर–नाग–विद्युत–सुपर्ण अरु अग्निकुमार।
वात–स्तनित–रु उदधि, द्वीप मिल दिक्कुमार दश भेद विचार।।
किन्नर अरु किंपुरुष महोरग हैं गंधर्व यक्ष राक्षस।
भूत पिशाच मिलाकर आठ प्रकार जानिये सब व्यन्तर।।4।।

(12–17)

ज्योतिषी देवों के भेद तथा गति और वैमानिक देवों के भेदों का कथन

ज्योतिष्का: सूर्या–चन्द्रमसौ ग्रह–नक्षत्र–प्रकीर्णक–तारकाश्च।।12।।
मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके।।13।। तत्कृत: कालविभाग:।।14।।
बहिरवस्थिता:।।15।। वैमानिका:।।16।।
कल्पोपपन्ना: कल्पातीताश्च।।17।।

सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक ज्योतिष देव कहे।
सदा मेरु की प्रदक्षिणा कर मध्य लोक में गमन करें।
इनसे काल भेद है, ढाई द्वीप परे सब हैं स्थिर।
वैमानिक के भेद लखो कल्पोपन्न अरु कल्पातीत।।5।।

(18–19)

वैमनिक देवों के विमानों के नाम

उपर्युपरि।।18।।

सौधर्मैशान–सानत्कुमार–माहेन्द्र–ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर–लान्तव–कापिष्ठ–शुक्र–महाशुक्र–शतार–सहस्रारेष्वानत– प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय–वैजयन्त–जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च।।19।।

ऊपर–ऊपर स्वर्ग लोक सौधर्मेशान कुमार–सनत्।
माहेन्द्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ शुक्र अरु महाशुक्र।।
शतार सहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत शुभ नाम।
नव ग्रैवेयक नव अनुदिश पर पाँच अनुत्तर कहें विमान।।6।।

(20–22)

ऊपर–ऊपर के देवों के लेश्या और सुख का वर्णन

स्थिति–प्रभाव–सुख–द्युति–लेश्या–विशुद्धीन्द्रियावधि–विषयतोऽधिकाः।।20।।

गति–शरीर–परिग्रहाभिमानतो हीनाः।।21।।

पीत–पद्म–शुक्ल–लेश्या द्वि–त्रि–शेषेषु।।22।।

विजय वैजयन्त–रु जयन्त अपराजित अरु सर्वार्थसिद्धि।
थिति प्रभाव द्युति सुख लेश्या सुविशुद्धि इन्द्रियाँ अवधि अधिक।।
गति शरीर परिग्रह अभिमान कहे हैं ऊपर–ऊपर हीन।
दो युगलों में पीत तीन में पद्म शेष में शुक्ल कही।।7।।

(23–26)

लौकान्तिक देवों के भेद और अनुत्तर विमानवासियों के शेष भवों का कथन

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः।।23।। ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः।।24।।
सारस्वतादित्य–वह्न्यरुण–गर्दतोय–तुषिताव्याबाधारिष्टाश्च।।25।।
विजयादिषु द्विचरमाः।।26।।

कल्प कहें सोलह स्वर्गों को ऊपर के हैं कल्पातीत।
ब्रह्म लोक में लौकान्तिक के आठ भेद सारस्वत आदित्य–
वह्नि अरुण अरु गर्दतोय हैं तुषित अव्याबाध अरिष्ट
विजयादिक दो अन्तिम नरभव मात्र एक सर्वार्थसिद्धि।।8।।

(27–29)

तिर्यंचों का स्वरूप तथा भवनवासी और सौधर्म–ईशान स्वर्ग में उत्कृष्ट आयु का वर्णन

औपपादिक–मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः।।27।।
स्थितिरसुर–नाग–सुपर्ण–द्वीप–शेषाणां सागरोपम–त्रिपल्योपमार्द्ध–हीनमिताः।।28।। सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके।।29।।

देव नारकी और मनुष्यों के अतिरिक्त सभी तिर्यंच।
असुरकुमार एक सागर थिति नागकुमार आयु त्रय पल्य।।
ढाई अरु दो पल्य सुपर्ण–द्वीप की शेष सभी की डेढ़।
सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में दो सागर कुछ अधिक कहें।।9।।

(30–32)

उत्तरोत्तर वैमानिक देवों की उत्कृष्ट आयु का वर्णन

सानत्कुमार–माहेन्द्रयोः सप्त।।30।।

त्रि–सप्त–नवैकादश–त्रयोदश–पञ्चदशभिरधिकानि तु।।31।।

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु–सर्वार्थसिद्धौ च।।32।।

सानत अरु माहेन्द्र स्वर्ग में सप्तोदधि कुछ अधिक थिति।
तीन सात नव ग्यारह तेरह पन्द्रह अधिक शेष की थिति।।
नव ग्रैवेयक नव अनुदिश विजयादिक पाँच विमानों में।
एक–एक सागर बढ़ती है आयु कल्पातीतों में।।10।।

(33–38)

देवों और नारकियों की जघन्य आयु का वर्णन

अपरा पल्योपममधिकम्।।33।।
परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा।।34।।
नारकाणां च द्वितीयादिषु।।35।।
दश–वर्ष–सहस्राणि प्रथमायाम्।।36।।
भवनेषु च।।37।।
व्यन्तराणां च।।38।।

सौधर्म और ईशान स्वर्ग में एक पल्य कुछ अधिक जघन्य।
पहले–पहले की उत्कृष्ट, वही आगे की आयु जघन्य।।
द्वितियादिक नरकों की है उत्कृष्ट, जघन आगामी की।
वर्ष सहस्र दस प्रथम नरक की भवनवासि अरु व्यन्तर की।।11।।

(39–42)

व्यन्तर और ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट तथा ज्योतिषी देवों की जघन्य आयु और लौकान्तिक देवों की आयु का वर्णन

परा पल्योपममधिकम्।।39।।
ज्योतिष्काणां च।।40।।
तदष्टभागोऽपरा।।41।।
लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्।।42।।

इक पल्योपम से कुछ ज्यादा व्यन्तर ज्योतिष की उत्कृष्ट–
पल्योपम का भाग आठवाँ ज्योतिष की ही आयु जघन।।
सब लौकान्तिक देवों की है आयु जघन एवं उत्कृष्ट।
सागर आठ जानिये यह सब जिन आगम के वचन प्रकृष्ट।।12।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।।

अध्याय–5

अजीव तत्त्व का वर्णन

(1–8)

पंचास्तिकाय का स्वरूप, संख्या आदि का वर्णन

अजीवकाया धर्माधर्माकाश–पुद्गलाः।।1।। द्रव्याणि।।2।।
जीवाश्च।।3।। नित्यावस्थितान्यरूपाणि।।4।।
रूपिणः पुद्गलाः।।5।। आ आकाशादेकद्रव्याणि।।6।।
निष्क्रियाणि च।।7।। असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्।।8।।

धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल अजीव हैं द्रव्य कहे।
अधिक प्रदेशी द्रव्य जीव भी नित्य अवस्थित द्रव्य कहे।।
पुदगल रूपी शेष अरूपी एक–एक हैं नभ पर्यन्त।
निष्क्रिय, धर्माधर्म जीव के हैं प्रदेश जानिये असंख्य।।1।।

(9–14)

पुद्गल आदि द्रव्यों के प्रदेशों का वर्णन

आकाशस्यानन्ताः।।9।। संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम्।।10।।
नाणोः।।11।। लोकाकाशेऽवगाहः।।12।।
धर्माधर्मयोः कृत्स्ने।।13।। एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्।।14।।

है आकाश अनन्त प्रदेशी संख्यासंख्य अनन्त पुद्गल।
परमाणु है एक प्रदेशी लोकाकाश रहें सब द्रव्य।।
धर्म–अधर्म समस्त लोक में व्याप्त तिलों में तेल समान।
पुद्गल एक तथा संख्यात असंख्य प्रदेश विभाग सुजान।।2।।

(15–18)

जीवों की अवगाहना तथा गति आदि में निमित्त का कथन

असंख्येय–भागादिषु जीवानाम्।।15।। प्रदेश–संहार–विसर्पाभ्यां

प्रदीपवत्।।16।। गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः।।17।।
आकाशस्यावगाहः।।18।।

जीवों का अवगाह लोक में, असंख्यातवें भाग प्रमाण।
हो संकोच तथा विस्तार प्रदेशों में दीपकवत् जान।।
गति स्थिति जीव-रु पुद्गल की क्रमशः धर्म-अधर्म उपकार।
सब द्रव्यों को अवगाहन दे यह उपकार करे आकाश।।3।।

(19-22)

जीवों का परस्पर एवं अन्य द्रव्यों के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध

शरीर-वाङ्-मनः-प्राणापानाः पुद्गलानाम्।।19।।
सुख-दुःख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च।।20।।
परस्परोपग्रहो जीवानाम्।।21।।
वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य।।22।।

तन मन वाणी श्वासोच्छ्वास रचे जाते हैं पुद्गल से।
इन्द्रिय सुख दुख जन्म मरण में भी पुद्गल निमित्त होते।।
एक दूसरे का आपस में करते जीव द्रव्य उपकार।
वर्तन क्रिया और परिणाम परत्वापरत्व काल उपकार।।4।।

(23-28)

पुद्गल का स्वरूप, भेद और अणु की उत्पत्ति का कथन

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः।।23।।
शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-
तमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च।।24।। अणवः स्कन्धाश्च।।25।।
भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते।।26।। भेदादणुः।।27।।
भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः।।28।।

स्पर्श-गन्ध-रस-वर्णमयी अरु शब्द बन्ध सूक्षम स्थूल-
संस्थान भेद तम छाया आतप अरु उद्योतवन्त पुद्गल।।

अणु एवं स्कन्ध, भेद-संघात तथा हों दोनों से।
अणु भेद से एवं चक्षुगम्य खंध हो दोनों से।।5।।

(29-35)

द्रव्य का लक्षण, कथन शैली एवं बन्धपद्धति के नियम

सद् द्रव्यलक्षणम्।।29।। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्।।30।।
तद्भावाऽव्ययं नित्यम्।।31।। अर्पितानर्पितसिद्धेः।।32।।
स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः।।33।। न जघन्यगुणानाम्।।34।।
गुणसाम्ये सदृशानाम्।।35।।

सत् लक्षण है द्रव्य तथा सत् व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य संयुक्त।
निज भावों के अव्यय होने को ही जिन कहते हैं नित्य।।
मुख्य-गौण से सिद्धि होती, बन्ध स्निग्धता रूक्षपने।
नहिं जघन्यगुण से एवं गुण हों सादृश तो नहीं बँधे।।6।।

(36-42)

बन्ध प्रक्रिया एवं द्रव्य, गुण, पर्याय का सामान्य स्वरूप

द्व्यधिकादिगुणानां तु।।36।।
बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च।।37।।
गुण-पर्ययवद् द्रव्यम्।।38।।
कालश्च।।39।। सोऽनन्तसमयः।।40।।
द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः।।41।। तद्भावः परिणामः।।42।।

यदि दो गुण हों अधिक तभी बँधते हैं आपस में पुद्गल।
ज्यादा गुण वाले कर लेते कम गुण वाले को निज सम।।
गुण-पर्यायों युक्त द्रव्य है काल अनन्त समययुत द्रव्य।
गुण द्रव्याश्रित निर्गुण जानो भाव द्रव्य का है परिणाम।।7।।

।।इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।।

अध्याय-6

आस्रव तत्त्व का वर्णन

(1-7)

आस्रव का लक्षण तथा भेद-प्रभेद आदि का कथन

काय-वाङ्-मन:कर्म योग:।।1।।
स आस्रव:।।2।।
शुभ: पुण्यस्याशुभ: पापस्य।।3।।
सकषायाकषाययो: साम्परायिकेर्यापथयो:।।4।।
इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रिया: पञ्च-चतु:-पञ्च-पञ्चविंशति-संख्या: पूर्वस्य भेदा:।।5।।
तीव्र-मन्द-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेष:।।6।।
अधिकरणं जीवाजीवा:।।7।।

मन-वच-तन की क्रिया योग है उसको आस्रव कहते हैं।
शुभ से पुण्य अशुभ से पाप-कर्म आस्रव नित होते हैं।।
सकषायी को साम्परायिक अकषायी को ईर्यापथ है।
इन्द्रिय कषाय अव्रत अरु क्रिया भेदरूप साम्परायिक है।।1।।

- पाँच चार अरु पाँच तथा पच्चीस भेद क्रमश: इनके।
तीव्र मन्द अज्ञात ज्ञात भावाधिकरण अरु वीर्य विशेष-
होते हैं तो इस निमित्त से कर्मास्रव भी होय विशेष।
आस्रव के आधार जीव एवं अजीव दोनों होते।।2।।

(8-9)

जीवाजीवाधिकरण के भेदों का वर्णन

आद्यं सम्रम्भ-समारम्भारम्भ-योग-कृत-कारितानुमत-कषाय-

विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकश:।।8।।
निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्वि-चतु-र्द्वि-त्रिभेदा: परम्।।9।।

पहला है संरम्भ समारम्भ आरम्भ एवं तीनों योग।
कृत कारित अनुमोदन चार कषाय रूप शत आठ कहो।।
निवर्तन द्वय चौ निक्षेप द्वय संयोग निसर्गत्रय।
ये अजीव-अधिकरण भेद ग्यारह कहते हैं श्री जिनवर।।3।।

(10-11)

ज्ञान-दर्शनावरण तथा असाता वेदनीय कर्म के आस्रव का कारण

तत्प्रदोष-निह्नव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयो:।।10।।
दु:ख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिवेदनान्यात्मपरोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य।।11।।

दर्श-ज्ञान में दोष तथा निह्नव मात्सर्य और अन्तराय।
आसादन-उपघात भाव से ज्ञान-दर्शनावरणास्रव।।
दु:ख शोक तापाक्रन्दन वध एवं ऐसा करे रुदन।
जिससे करुणा हो निज-पर को होय असाता प्रकृति बन्ध।।4।।

(12-14)

साता वेदनीय तथा मोहनीय कर्म के आस्रव का कारण

भूत-व्रत्यनुकम्पा-दान-सरागसंयमादि-योग: क्षान्ति: शौचमिति सद्वेद्यस्य।।12।।
केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।।13।।
कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य।।14।।

जीवों व्रतियों में अनुकम्पा दान तथा संयमयुत राग।
क्रोध-मान-माया-निवृत्ति अरु शौच भाव से सातास्रव।।

केवलि संघ धर्म श्रुत देव अवर्णवाद से दर्शनमोह।
हो कषाय का तीव्र उदय इन परिणामों से चारित मोह।।5।।

(15-19)

आयु कर्म के आस्रव का कारण

बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।।15।।
माया तैर्यग्योनस्य।।16।।
अल्पारम्भ-परिग्रहत्वं मानुषस्य।।17।। स्वभावमार्दवञ्च।।18।।
निश्शील-व्रतत्वञ्च सर्वेषाम्।।19।।

बहु आरम्भ परिग्रह से नरकायु का होता आस्रव।
माया से तिर्यंच, अल्प आरम्भ परिग्रह से नरभव।।
मृदु स्वभाव से भी नर होते सुरगति में भी जाते हैं।
शील व्रतों से रहित जीव चारों गतियों में जाते हैं।।6।।

(20-23)

देवायु तथा नाम कर्म के आस्रव का कारण

सरागसंयम-संयमासंयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि दैवस्य।।20।।
सम्यक्त्वं च।।21।।
योगवक्रता-विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।।22।।
तद्विपरीतं शुभस्य।।23।।

यदि सराग संयम हो एवं संयम सहित असंयम भाव।
हो अकाम निर्जरा बालतप समकित से भी देवास्रव।।
योग वक्रता, विसंवाद से अशुभ नाम कर्मास्रव हो।
इनसे हो विपरीत भाव तो नाम कर्म शुभ आस्रव हो।।7।।

(24)

तीर्थंकर नाम कर्म एवं नीच गोत्र कर्म के आस्रव का कारण

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्षण-

ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्याग- तपसी
साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरण- मर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचन-भक्ति-
रावश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना-
प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य।।24।।
परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च
नीचै-र्गोत्रस्य।।25।।

दर्श विशुद्धि विनय सम्पन्न शीलव्रत में अतिचार न हो-
हो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग संवेग शक्तितः त्याग कहो-
तप भी, साधु समाधि और वैयावृत्ति अर्हत् भक्ति-
आचार्यों बहुश्रुत प्रवचन में भक्ति और आवश्यक भी।।8।।

-जिनशासन की हो प्रभावना अरु प्रवचन वात्सल्य रखे।
सोलह भावों से तीर्थंकर प्रकृति नाम का कर्म बँधे।।
परनिन्दा अरु आत्मप्रशंसा सद्गुण का जो लोप करे।
असद्गुणों को प्रकटावे तो नीच गोत्र की प्रकृति बँधे।।9।।

(26-27)

उच्च गोत्र एवं अन्तराय कर्म के आस्रव का कारण

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।।26।।
विघ्नकरणमन्तरायस्य।।27।।

(हरिगीत)

उक्त भावों से विपर्यय नम्र निर-अभिमान हो।
तो उच्च गोत्र-रु विघ्न करने से प्रकृति अन्तराय हो।।10।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः।।

अध्याय–7

व्रतों का स्वरूप, भेद, भावना तथा अतीचार आदि का वर्णन

(1–4)

व्रतों का स्वरूप, भेद और अहिंसाव्रत की भावनाओं का वर्णन

हिंसाऽनृत–स्तेयाब्रह्म–परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।।1।।
देश–सर्वतोऽणु–महती।।2।। तत्स्थैर्यार्थं भावना: पञ्च पञ्च।।3।।
वाङ्–मनो–गुप्तीर्यादाननिक्षेपण–समित्यालोकितपान–
भोजनानि पञ्च।।4।।

हिंसा अनृत अरु चोरी अब्रह्म परिग्रह का हो त्याग।
व्रत कहलाते हैं ये अणुव्रत और महाव्रत भेद कहा।।
उनमें थिरता हेतु भावना पाँच पाँच होती सबकी।
मन–वच गुप्ति, समिति ईर्या, आलोकित अशन अहिंसा की।।1।।

(5–10)

शेष चार व्रतों की भावनाएँ

क्रोध–लोभ–भीरुत्व–हास्य–प्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च
पञ्च।।5।। शून्यागार–विमोचितावास–परोपरोधाकरण–भैक्ष्यशुद्धि–
सधर्मा–विसंवादा: पञ्च।।6।।
स्त्रीरागकथाश्रवण–तन्मनोहरांगनिरीक्षण–पूर्वरतानुस्मरण–
वृष्येष्टरस–स्वशरीर–संस्कारत्यागा: पञ्च।।7।।
मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषय–राग–द्वेष–वर्जनानि पञ्च।।8।।
हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम्।।9।। दु:खमेव वा।।10।।

क्रोध–लोभ–भय–हास्य वचन नहिं कहे, वचन निर्दोष कहे।
दूजे व्रत में; शून्य त्यक्त आवास अन्य अवरोध तजे–
भिक्षा–शुद्धि साधर्मी से अविसंवाद तीसरे की।
नारी–राग कथा सुनना सु–अंग निरखने का त्यागी।।2।।

पूर्व भोग स्मरण करे नहिं, इष्ट रसों का त्याग करे।
तन का भी संस्कार करे नहिं, ब्रह्मचर्य भावना कहें।
पंचेन्द्रिय विषयों में राग न द्वेष न हो अपरिग्रह की।
पापों से हो उभय लोक में भय निन्दा एवं दु:ख भी।।3।।

(11–13)

मैत्री आदि भावनाओं तथा हिंसा का कथन

मैत्री–प्रमोद–कारुण्य–माध्यस्थ्यानि च सत्त्व–गुणाधिक–
क्लिश्यमानाविनेयेषु।।11।। जगत्कायस्वभावौ वा
संवेगवैराग्यार्थम्।।12।। प्रमत्तयोगात्प्राण–व्यपरोपणं हिंसा।।13।।

मैत्री भाव सभी जीवों में गुणी जनों में होय प्रमोद।
दुखियों के प्रति करुणा एवं दुर्जन में मध्यस्थ रहो।
संवेग और वैराग्य हेतु जग–तन स्वभाव का हो चिन्तन।
हिंसा होती है प्रमादवश करे प्राण का व्यपरोपण।।4।।

(14–20)

शेष चार पापों तथा व्रती का स्वरूप एवं भेदों का कथन

असदभिधानमनृतम्।।14।। अदत्तादानं स्तेयम्।।15।। मैथुनमब्रह्म।।16।।
मूर्च्छा परिग्रह:।।17।। निश्शल्यो व्रती।।18।। अगार्यनगारश्च।।19।।
अणुव्रतोऽगारी।।20।।

असत् कथन में झूठ पाप अरु ग्रहण अदत्त कहें चोरी।
मैथुन क्रिया अब्रह्म तथा मूर्च्छा का भाव परिग्रह ही।।
व्रती रहें नि:शल्य, भेद द्वय देशव्रती अरु सकलव्रती।
पाँच पाप के एकदेश त्यागी होते हैं अणुव्रती।।5।।

(21–23)

गुणव्रत, शिक्षाव्रत, सम्यक्त्व और अहिंसाणुव्रत के अतिचारों का कथन

दिग्देशानर्थदण्डविरति–सामायिक–प्रोषधोपवासोपभोग–परिभोग–

परिमाणातिथिसंविभागव्रत-संपन्नश्च।।21।।

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता।।22।।

शंकाकांक्षा-विचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसा-संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः।।23।।

व्रतशीलेषु पञ्च-पञ्च यथाक्रमम्।।24।।

बन्ध-वधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।।25।।

दिग्व्रत देश अनर्थदण्ड विरति समता प्रोषध उपवास।
सीमित हों भोगोपभोग अरु अतिथि विभाग कहे व्रत सात।
मरण समय में प्रीति पूर्वक श्रावक सल्लेखना गहो।
जिनवच में शंका विचिकित्सा अरु भोगों की आकांक्षा।।6।।

-अन्य दृष्टि की करे प्रशंसा-स्तुति समकित के अतिचार।
अणुव्रत गुणव्रत शिक्षाव्रत के होते पाँच पाँच अतिचार।।
वध बन्धन छेदन जीवों का और रखे उन पर अतिभार।
अन्न-पान नहिं देवे उनको पाँच अहिंसा व्रत अतिचार।।7।।

(26-27)

सत्य और अचौर्याणुव्रतों के अतिचारों का कथन

मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकार-मन्त्रभेदाः।।26।।

स्तेनप्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिक-मानोन्मान-प्रतिरूपक-व्यवहाराः।।27।।

दे मिथ्या उपदेश, गुप्त को करे प्रकट, झूठा लिखना।
रखी अमानत को हड़पे, साकार मन्त्र, सत् का अतिचार।।
चौर्य कर्म की करे प्रेरणा चौर्य वस्तुओं का आदान।
राज्य विरुद्ध-रु प्रतिरूपक हीनाधिक वस्तु मानोन्मान।।8।।

(28-29)

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहाणुव्रत के अतिचारों का कथन

परविवाहकरणेत्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानंगक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः।।28।। क्षेत्र-वास्तु-हिरण्य-सुवर्ण-धन-धान्य-दासी-दास-कुप्य-प्रमाणातिक्रमाः।।29।।

अन्य विवाह कराना, परनारी-विधवा-त्यक्ता का संग।
रमे अन्य अंगों से अति कामुकता करे ब्रह्मचर्य भंग।।
खेत मकान स्वर्ण चाँदी धन-धान्य तथा दासी अरु दास।
वस्त्रादिक परिग्रह की सीमा का उल्लंघन है अतिचार।।9।।

(30-31)

दिग्व्रत और देशव्रत के अतिचारों का कथन

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि।।30।।

आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्दरूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः।।31।।

ऊपर नीचे तिर्यक् दिशि में सीमा का हो उल्लंघन।
क्षेत्र वृद्धि अरु सीमा विस्मृति अतीचार दिग्व्रत के पंच।
सीमा के बाहर से वस्तु मँगाना, सेवक को भेजें।
शब्द-रूप से करे इशारा, पुद्गल क्षेपण जानो पंच।।10।।

(32-33)

अनर्थदण्डव्रत और सामायिक व्रत के अतिचारों का कथन

कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोग-परिभोगानर्थक्यानि।।32।। योग-दुष्प्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि।।33।।

हँसी मजाक अश्लील चेष्टा बहुत बोलना सोचे व्यर्थ।
व्यर्थ वचन अरु क्रिया, कीमती वस्तु रखे ये पाँच अनर्थ।।
मन-वच-तन की अनुचित वृत्ति सामायिक में नहिं उत्साह।
पाठ भूलना ये पाँचों हैं सामायिक व्रत के अतिचार।।11।।

(34-35)

प्रोषधोपवास और भोगोपभोगपरिमाण व्रत के अतिचारों का कथन

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गाऽऽदान-संस्तरोपक्रमणानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि।।34।।

सचित्त-सम्बन्ध-सम्मिश्राभिषव-दुष्पक्वाहारा:।।35।।

देखे शोधे बिना उठाना धरना शय्या पर सोना।
धर्म कार्य में रखे अनादर विस्मृति प्रोषध के अतिचार।।
वस्तु सचित्त तथा सम्बन्धित मिश्रित या कामोत्तेजक।
जला अधपका खाना, ये परिमाण-भोग के हैं अतिचार।।12।।

(36-37)

अतिथि संविभाग और संल्लेखना व्रत के अतिचारों का कथन

सचित्तनिक्षेपापिधान-परव्यपदेश-मात्सर्य-कालातिक्रमा:।।36।।

जीवितमरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-निदानानि।।37।।

सचित पात्र में रखे सचित से ढके अन्य द्वारा देना।
करे अनादर समय टाल दे अतिथि-भाग व्रत के अतिचार।।
जीने-मरने की वांछा एवं मित्रों से हो अनुराग।
पूर्व भोग स्मृति, निदान, ये सल्लेखन व्रत के अतिचार।।13।।

(38-39)

दान का स्वरूप और विशेषताएँ

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।।38।।

विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेष:।।39।।

(हरिगीतिका)

निज वस्तुओं को स्व-पर अनुग्रह हेतु देना दान है।
विधि द्रव्य दाता पात्र से हों विशेषतायें दान में।।14।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्याय:।।

अध्याय-8

बन्ध तत्त्व का वर्णन

(1-6)

बन्ध के कारण, भेद एवं ज्ञानावरण के भेदों का वर्णन

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतव:।।1।।

सकषायत्वाज्जीव: कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्ध:।।2।।

प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधय:।।3।।

आद्यो ज्ञानदर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तराया:।।4।।

पञ्च-नव-द्व्यष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम्।।5।।

मति-श्रुतावधि-मन:पर्यय-केवलानाम्।।6।।

मिथ्यादर्शन अविरति और प्रमाद कषाय योग से बन्ध।
सकषायी होने से कर्म योग्य पुद्गल का आना बन्ध।।
प्रकृति स्थिति एवं अनुभाग प्रदेश, बन्ध के चार प्रकार।
ज्ञानदर्शनावरण वेदनी मोहनीय - ये प्रकृति चार।।1।।

-पुन: आयु अरु नाम गोत्र फिर अन्तराय भी मिलकर आठ।
पाँच तथा नव दो अट्ठाइस चार ब्यालिस दो अरु पाँच।।
क्रमश: सभी प्रकृतियों के भेदों की यह संख्या जानो।
ज्ञानावरणी मति श्रुत अवधि मनपर्यय केवल मानो।।2।।

(7-9)

दर्शनावरण एवं वेदनीय कर्म के भेद

चक्षुरचक्षुरवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-

प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च।।7।।

सदसद्वेद्ये।।8।।

चक्षु अचक्षु अवधि केवल निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला।
प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्ध ये दर्शनावरणी भेद कहा।।
साता और असाता दो हैं वेदनीय के भेद कहो।
दर्शन अरु चारित्र मोहनी मोह प्रकृति के भेद लखो।।3।।

(9-13)

मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म के भेद

दर्शन-चारित्र-मोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रि-द्वि-नव-षोडशभेदा: सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकश: क्रोध-मान-माया-लोभा:।।9।।

नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि।।10।।

गति-जाति-शरीरांगोपांग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतय: प्रत्येक शरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय-यश:कीर्ति: सेतराणि तीर्थकरत्वं च।।11।।

उच्चैर्नीचैश्च।।12।।

दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम्।।13।।

समकित अरु मिथ्यात्व मिश्र ये तीनों दर्शनमोह प्रकृति।
हास्य अरति रति शोक भीति अरु घृणा नपुंसक नर-नारी-
नौ प्रकार अकषाय वेदनी सोलह भेद कषाय कही।
अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी।।4।।

पुन: संज्वलन भेदरूप हैं क्रोध मान अरु माया लोभ।
नारक तिर्यक् नर सुर चारों आयु कर्म के भेद लखो।।
गति जाति तन अंगोपांग और निर्माण तथा बन्धन।
संघात और संस्थान संहनन फरुस गन्ध रस एवं वर्ण।।5।।

-आनुपूर्वी अगरुलघु उपघात तथा परघात लखो।
आतप अरु उद्योत तथा उच्छ्वास विहायोगति जानो।।
प्रत्येक देह साधारण त्रस थावर अरु सुभग और दुर्भग।
सुस्वर दुःस्वर सूक्ष्म स्थूल शुभाशुभ प्रकृति नाम की लख।।6।।

-पर्याप्ति अरु अपर्याप्ति स्थिर अस्थिर आदेय कही।
अनादेय यश-अयश कीर्ति अरु तीर्थंकर भी प्रकृति लखी।।
ऊँच नीच है गोत्र तथा अब पाँच प्रकार लखो अन्तराय।
दान लाभ अरु भोग तथा उपभोग वीर्य ये भेद बताय।।7।।

(14-20)

कर्मों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का वर्णन

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्-सागरोपम-कोटीकोट्य: परा स्थिति:।।14।।

सप्ततिर्मोहनीयस्य।।15।।

विंशतिर्नाम-गोत्रयो:।।16।।

त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाण्यायुष:।।17।।

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य।।18।।

नामगोत्रयोरष्टौ।।19।।

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता।।20।।

प्रथम तीन अरु अन्तराय की उत्कृष्ट थिति है सागर तीस-
कोड़ाकोड़ी, मोहनीय की सत्तर, गोत्र-नाम की बीस।।
आयु कर्म की तेतीस सागर, वेदनी जघन मुहूर्त बारह।
नाम-गोत्र की आठ मुहूर्त-रु शेष सभी मुहूर्त अन्तर।।8।।

(21-24)

अनुभाग एवं प्रदेश बन्ध का स्वरूप

विपाकोऽनुभवः।।21।।

स यथानाम।।22।।

ततश्च निर्जरा।।23।।

नाम प्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः।।24।।

कर्मों का विपाक अनुभव होता उनके नामों अनुसार।
फल देकर उन कर्म प्रकृतियों की निर्जरा कही सविपाक।
नाम-गुणों के प्रत्यय परमाणु प्रदेश में स्थित हैं।
योगों की विशेषता से प्रतिसमय जीव से बँधते हैं।।9।।

(25-26)

पुण्य एवं पाप प्रकृतियों का संक्षिप्त परिचय

सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम्।।25।।

अतोऽन्यत्पापम्।।26।।

(हरिगीतका)

वेदनी साता तथा शुभ आयु नाम-रु गोत्र की।
प्रकृतियाँ हैं पुण्य, इनके अलावा सब पाप ही।।10।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः।।

अध्याय-9

संवर और निर्जरा तत्त्व का वर्णन

(1-8)

संवर, निर्जरा और संवर के कारणों का कथन

आस्रव निरोधः संवरः।।1।।

स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परिषहजय-चारित्रैः।।2।।

तपसा निर्जरा च।।3।। सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः।।4।।

ईर्या-भाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः।।5।।

उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः।।6।।

अनित्याशरण-संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वाख्या तत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः।।7।।

मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परिषहाः।।8।।

आस्रव का निरोध संवर है गुप्ति समिति अरु धर्म कहो।
अनुप्रेक्षा परिषह जय एवं चारित - इनसे संवर हो।।
तप से संवर और निर्जरा, सम्यक् योग निरोध गुप्ति।
ईर्या भाषा निक्षेपण-आदान एषणा समिति कही।।1।।

-पंचम है उत्सर्ग समिति अरु कहे धर्म के लक्षण दश।
उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव सत्य शौच संयम अरु तप -
त्याग और आकिंचन एवं ब्रह्मचर्य को धर्म कहो।
अनुप्रेक्षा बारह अनित्य अशरण संसारैकत्व लखो।।2।।

- अन्यत्व अशुचि आस्रव संवर निर्जरा लोक बोधिदुर्लभ।
तथा धर्म का चिन्तन अनुप्रेक्षा है जिससे मुक्ति सुलभ।।
संवर पथ पर रहे अडिगता और कर्म क्षय हेतु कहें।
सहने योग्य परीषह बाइस जंगल में मुनिराज सहें।।3।।

(9)

बाईस परीषहों के नाम

क्षुत्पिपासा-शीतोष्ण-दंशमशक-नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्याऽऽक्रोश-वध-याचनाऽलाभ-रोग-तृणस्पर्श- मल-सत्कार-पुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि।।9।।

क्षुधा तृषा शीतोष्ण दंशमश नाग्न्य अरति स्त्री चर्या-
निषद्या शय्याक्रोश याचना वध अलाभ अरु रोग कहा-
तृणस्पर्श सत्कार तथा मल पुरस्कार प्रज्ञा अज्ञान-
और अदर्शन मिल सब होते हैं बाईस परीषह जान।।4।।

(10-14)

गुणस्थानों में परीषहों की संख्या तथा उनमें निमित्तभूत कर्म का कथन

सूक्ष्मसाम्परायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश।।10।।
एकादश जिने।।11।।
बादर-साम्पराये सर्वे।।12।। ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने।।13।।
दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ।।14।।

दसवें से बारहवें तक हो सकते हैं चौदह परिषह।
तेरहवें में ग्यारह एवं छह से नौ तक सब परिषह।।
प्रज्ञा अरु अज्ञान परीषह ज्ञानावरण निमित्त से हों।
दर्श-मोह से होय अदर्शन अन्तराय से लाभ न हो।।5।।

(15-20)

चारित्रमोह और वेदनीय कर्म निमित्तक परीषह तथा चारित्र और तप के भेदों का कथन

चारित्रमोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्याऽऽक्रोश-याचना-सत्कार-पुरस्काराः।।15।। वेदनीये शेषाः।।16।।
एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः।।17।।

सामायिक-च्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातमिति चारित्रम्।।18।।
अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-विविक्त-शय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः।।19।।
प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम्।।20।।

नाग्न्य अरति स्त्री निषद्या अरु आक्रोश याचना भी।
होते हैं सत्कार पुरस्कार चारित-मोह उदय में ही।।
वेदनीय से शेष, अधिकतम एक साथ होते उन्नीस।
सामायिक छेदोपस्थापन अरु परिहार विशुद्धि भी।।6।।

-सूक्ष्म साम्पराय-रु यथाख्यात पाँच चारित्र सही।
अनशन अवमौदर्य और वृत्ति परिसंख्या रस त्यागी -
विविक्तशय्यासन अरु कायक्लेश बाह्य तप, अरु अन्तरंग-
प्रायश्चित विनय वैयावृत स्वाध्याय व्युत्सर्ग सुध्यान।।7।।

(21-23)

प्रायश्चित्त और विनय तप के भेद

नव-चतुर्दश-पञ्च-द्विभेदा यथाक्रमं प्राग् ध्यानात्।।21।।
आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोपस्थापनाः।।22।। ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः।।23।।

ध्यान पूर्व नौ चार और दश पाँच तथा दो भेद कहे।
प्रायश्चित के आलोचन प्रतिक्रमण और तदुभय कहते-
तपश्छेद व्युत्सर्ग विवेक-रु परिहारोपस्थापन है।
ज्ञान दर्श चारित्र और उपचार विनय के भेद कहे।।8।।

(24-26)

वैयावृत्त्य, स्वाध्याय और व्युत्सर्ग तप के भेद

आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल-संघ-साधु-

मनोज्ञानाम्।।24।।

वाचना-पृच्छनाऽनुप्रेक्षाऽम्नाय-धर्मोपदेशाः।।25।।

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः।।26।।

आचार्योपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल अरु संघ-
साधु मनोज्ञ - इन दश प्रकार के मुनि सेवा वैयावृत्त अंग।।
वाचन पृच्छा अनुप्रेक्षा आम्नाय सुनाना है स्वाध्याय।
बाह्याभ्यन्तर उपधि त्याग - यह दो प्रकार व्युत्सर्ग कहा।।9।।

(31-35)

आर्तध्यान एवं रौद्रध्यान के भेद

विपरीतं मनोज्ञस्य।।31।।

वेदनायाश्च।।32।। निदानं च।।33।।

तदविरत-देशविरत-प्रमत्तसंयतानाम्।।34।।

हिंसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः।।35।।

इष्ट प्राप्ति का चिन्तन दूजा वेदन निग्रह तीजा आर्त।
चौथा है निदान, हो अविरति देशविरत प्रमत्त तक आर्त।।
हिंसा अनृत अरु स्तेय विषय संरक्षण रौद्र कहा।
अविरत चारों, देशविरत को रौद्र ध्यान है हो सकता।।11।।

(36-42)

धर्मध्यान और शुक्लध्यान के भेद

आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम्।।36।।

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।।37।। परे केवलिनः।।38।।

पृथक्त्वैकत्ववितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्तीनि।।39।।

त्र्येकयोग-काययोगायोगानाम्।।40।।

एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे।।41।। अवीचारं द्वितीयम्।।42।।

आज्ञा विचय अपाय विपाक और संस्थान धर्म चौ ध्यान।
पूर्वज्ञानधर को होते हैं प्रथम द्वितीय भेद शुक्ल ध्यान।।
अन्तिम दो केवलि को होते चार भेद जानो यह ध्यान।
पृथक्त्व और एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति सुध्यान।।12।।

व्युपरत क्रिया निवृति चतुर्थम पहला तीनों योग सहित-
किसी एक योगी को दूजा-तीजा काया योग सहित।।
चौथा ध्यान अयोगी को है पहले दो सवितर्क विचार-
पूर्व ज्ञानधारी को होते, दूजे में हों नहीं विचार।।13।।

(43-47)

वितर्क और विचार का स्वरूप, असंख्य गुणश्रेणी निर्जरा के ग्यारह स्थान एवं निर्ग्रन्थों के भेद

वितर्कः श्रुतम्।।43।। वीचारोऽर्थ-व्यंजन-योगसंक्रान्तिः।।44।।

सम्यग्दृष्टि-श्रावकविरतानन्तवियोजक-दर्शनमोह-क्षपकोपशमकोपशान्तमोह-क्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः।।45।।

पुलाक-बकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः।।46।। संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ-लिंग-लेश्योपपादस्थान-विकल्पतः साध्याः।।47।।

श्रुत वितर्क है व्यंजन अर्थ-रु योगों की संक्रान्ति वीचार।
गुण असंख्य निर्जरा कही है इन सबकी क्रमशः अनिवार-
सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानन्त-वियोजक दृगमोह क्षपक।
चरितमोह उपशामक अरु उपशान्तमोहयुत तथा क्षपक-।।14।।

-क्षीण मोह एवं जिनेन्द्र क्रम से करते निर्जरा महान।
पुलाक बकुश कुशील और निर्ग्रन्थ स्नातक मुनि भगवान।।
संयम श्रुत प्रतिसेवन तीर्थ लिंग लेश्या उपपाद स्थान।
इन आठों अनुयोगों से हो पाँचों मुनि में भेद सुजान।।15।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः।।

अध्याय–10

मोक्ष तत्त्व का वर्णन

(1–4)

अरहन्त एवं सिद्ध दशा का स्वरूप

मोहक्षयाज्ज्ञान–दर्शनावरणान्तराय–क्षयाच्च केवलम्।।1।।
बन्धहेत्वभाव–निर्जराभ्यां कृत्स्न–कर्मविप्रमोक्षो मोक्ष:।।2।।
औपशमिकादि–भव्यत्वानां च।।3।।
अन्यत्र केवलसम्यक्त्व–ज्ञान–दर्शन–सिद्धत्वेभ्य:।।4।।

मोहक्षय एवं त्रिघाति के क्षय से होता केवलज्ञान।
संवर और निर्जरा से सम्पूर्ण कर्मक्षय है निर्वाण।।
उपशम उदय क्षयोपशम भाव तथा भव्यत्व नष्ट होते।
क्षायिक समकित दर्शन ज्ञान और सिद्धत्व सदा रहते।।1।।

(5–7)

मुक्त जीवों का ऊर्ध्वगमन स्वभाव

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्।।5।।
पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च।।6।।
आविद्ध–कुलाल–चक्रवद् व्यपगत–लेपालाम्बुवदेरण्डबीजवदग्नि–शिखावच्च।।7।।

कर्मक्षय होने पर ऊपर जीव गमन करता लोकान्त।
पूर्व प्रयोग असंग बन्ध का छेद स्वभावी–ऊर्ध्वगमन।।
ज्यों कुम्हार का चक्र घूमता तूँबी से मिट्टी हटती।
एरण्ड बीज ऊपर जाता अरु अग्नि शिखा ऊपर जाती।।2।।

(8–9)

सिद्ध भगवन्तों की लोकाग्र में स्थिति तथा व्यवहार नय से सिद्धों के भेदों का वर्णन

धर्मास्तिकायाभावात्।।8।।
क्षेत्र–काल–गति–लिंग–तीर्थ–चारित्र–प्रत्येकबुद्ध–बोधित–ज्ञानावगाहनान्तर–संख्याल्पबहुत्वत: साध्या:।।9।।

नहिं अलोक में धर्मद्रव्य है अत: जीव रहता लोकाग्र।
क्षेत्र काल गति लिंग तीर्थ चारित्र और बोधित प्रत्येक–
बोधित बुद्ध ज्ञान अवगाहन अन्तर संख्या अल्प बहुत्व–
इन बारह बिन्दु के द्वारा सिद्ध जीव हो सकें विभक्त।।3।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्याय:।।

(दोहा)

जिन गुरु जिनश्रुत भक्ति से, प्रेरित यह अनुवाद।
पढ़ें सुनें भविजन सदा, पावें निजपद राज।।
भाव–द्रव्य की दृष्टि से, यदि हो कोई भूल।
ध्यानाकर्षित करें सुधी, शीघ्र लहूँ भव–कूल।।

*****

कला सीख लें

आतम–हित का ज्ञाता हित में वर्ते रहे अहित से दूर।
अत: आत्महित कैसे हो यह कला सीख लेना भरपूर।।

– भगवती आराधना, छन्द 105

द्रव्य संग्रह

(वीरछन्द)

जीव-अजीव द्रव्य का जिनने दिव्य-ध्वनि में कथन किया।
वन्दनीय जो देवेन्द्रों से, वन्दन उनको शीश नवा।।1।।

जीवित है, उपयोगमयी, कर्ता, बिनमूर्ति, स्वदेह प्रमाण।
भोक्ता संसारस्थ सिद्ध अरु ऊर्ध्वगमन स्वाभाविक भाव।।2।।

इंद्रिय बल अरु आयु श्वास-उच्छ्वास प्राण जिसके त्रयकाल।
जीव वही व्यवहार वचन से, निश्चय से चैतन्य स्वभाव।।3।।

दर्शन-ज्ञान उभयविध है उपयोग, दर्श के चार प्रभेद।
चक्षु-अचक्षु-अवधि केवल, दर्शन के चार भेद हैं ज्ञेय।।4।।

ज्ञान आठ विध मति श्रुत अवधि ज्ञान और अज्ञान कहे।
मनपर्यय अरु केवल, ज्ञान प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप द्वय है।।5।।

आठ ज्ञान चौ दर्शन हैं सामान्य जीव लक्षण कहता-
नय व्यवहार, किन्तु नय-शुद्ध ज्ञान-दर्शन लक्षण कहता।।6।।

पाँच वर्ण-रस-गन्ध उभय अरु आठ स्पर्श न निश्चय से।
अत: अमूर्तिक जीव, कहे व्यवहार मूर्तिक बन्धन से।।7।।

पुदगल कर्मों का कर्ता व्यवहार कहे, पर निश्चय से।
आत्मा चेतन कर्म करे अरु शुद्धभाव को शुधनय से।।8।।

पुदगल कर्म फलों के सुख-दुख भोगे नय व्यवहार कहे।
निश्चय नय से आत्मा अपने चेतन भावों को भोगे।।9।।

लघु-गुरु तन में जीव रहे, संकोच और विस्तार करे।
असमुद्घात दशा में किंतु असंख्य प्रदेशी निश्चय से।।10।।

भू-जल-अग्नि-वायु-वनस्पति आदि एक इन्द्रिय थावर।
शंखादिक दो त्रय चौ पंचेन्द्रिय त्रस जीव कहें जिनवर।।11।।

पंचेन्द्रिय समनस्क और अमनस्क शेष सब हैं मनहीन।
एकेन्द्रिय हैं बादर-सूक्ष्म अपर्याप्त-पर्याप्त सभी।।12।।

गुणस्थान-मार्गणारूप चौदह-चौदह संसारी जीव।
भेद जानिये नय-अशुद्ध से कहे शुद्धनय शुद्ध सभी।।13।।

कर्मरहित गुण आठ सहित हैं सिद्ध चरम-तन से कुछ न्यून।
अविनाशी, लोकाग्रस्थित हैं व्ययोत्पाद से हैं संयुक्त।।14।।

पुद्गल-धर्म-अधर्म-काल आकाश जानिये द्रव्य अजीव।
रूपादिक गुण युक्त मूर्तिक पुद्गल, शेष अमूर्तिक हैं।।15।।

शब्द-बन्ध स्थूल सूक्ष्म संस्थान भेद अरु तम छाया।
आतप अरु उद्योत सहित ये सब पुद्गल की पर्याया।।16।।

गति परिणत पुद्गल जीवों को धर्म गमन में सहकारी।
जैसे जल मछली को, जो नहिं चले उन्हें न चलाए कभी।।17।।

थिर जीवों पुद्गल को थिरता में अधर्म सहकारी है।
जैसे पथिकों को छाया, चलने वालों को नहिं रोके ।।18।।

जो जीवादिक को देता स्थान उसे जानो आकाश।
जिनवर कहें उभयविध नभ है लोकाकाश अलोकाकाश।।19।।

धर्म अधर्म काल पुद्गल अरु जीवों का निवास स्थान।
वह है लोकाकाश और उससे बाहर अलोक स्थान।।20।।

द्रव्यों के परिवर्तन रूप दिखे जो वही काल-व्यवहार।
और वर्तना लक्षण वाला काल उसे जानो परमार्थ।।21।।

लोकाकाश प्रदेश एक-इक पर हैं एक-एक मानो।
रत्नों की राशिवत् हैं वे काल असंख्य द्रव्य जानो।।22।।

इस प्रकार छह द्रव्य कहे हैं जीव-अजीव प्रभेदों से।
इनमें काल रहित बाकी सब पाँचों अस्तिकाय जानो।।23।।

इन सबका अस्तित्व अत: इनको जिनवर ने अस्ति कहा।
काया-सम हैं अधिक प्रदेशी अत: काययुत अस्तिकाय।।24।।

एक जीव अरु धर्म-अधर्म असंख्य प्रदेशी आभ अनन्त।
पुद्गल त्रिविध प्रदेशी एवं एक प्रदेशी काल अतन।।25।।

एक प्रदेशी अणु भी होता विविध स्कन्ध प्रदेश अनेक।
अत: कहें सर्वज्ञ उसे उपचार मात्र से बहुत-प्रदेश।।26।।

पुद्गल परमाणु के द्वारा जितना नभ होता है व्याप्त।
जानो उसे प्रदेश, सभी अणुओं को दे सकता स्थान।।27।।

आस्रव बन्धन संवर निर्जर मोक्ष पुण्य अरु पाप सहित।
जीव-अजीव विशेष इन्हें भी कहता हूँ अब मैं संक्षिप्त।।28।।

आत्मा के जिन परिणामों से कर्म-आगमन होता है।
जिनवर कहें उसे भावास्रव कर्मागम द्रव्यास्रव है।।29।।

मिथ्या-अविरति अरु प्रमाद क्रोधदि-योग भावास्रव भेद।
पाँच-पाँच पन्द्रह अरु चार तीन भेद क्रमश: विज्ञेय।।30।।

ज्ञानावरणादिक कर्मों के योग्य पुद्गलों का आना।
विविध भेद द्रव्यास्रव जानो कहते श्री जिन भगवाना।।31।।

जिस चैतन्य भाव से बँधते कर्म, भाव-बन्धन वह जान।
जीव प्रदेश-कर्म का हो अन्योन्य प्रवेश द्रव्य-बन्धन।।32।।

प्रकृति-प्रदेश-स्थिति-अनुभाग भेद से बन्धन चार प्रकार।
प्रकृति-प्रदेश योग से हो एवं कषाय से थिति अनुभाग।।33।।

कर्म-आस्रव के निरोध में कारण जो चेतन परिणाम।
वही भाव-संवर जानो अरु द्रव्यास्रव निरोध है अन्य।।34।।

समिति गुप्ति व्रत धर्म और अनुप्रेक्षा परिषहजय परिणाम।
विविध भेद चारित्र, भाव-संवर के भेद कहें भगवान।।35।।

यथासमय या तप के द्वारा भुक्त कर्म, जिन भावों से-
खिरें, वही है भाव-निर्जरा, द्रव्य-निर्जरा कर्म खिरें।।36।।

आत्मा के जिन परिणामों से सर्व कर्म का क्षय होता।
भाव-मोक्ष जानो अरु द्रव्य-मोक्ष कर्मों का क्षय होना।।37।।

भाव शुभाशुभयुत होने से होते जीव पुण्य अरु पाप।
साता और शुभायु सुनाम सुगोत्र पुण्य शेष सब पाप।।38।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित हैं मोक्षमार्ग कहता व्यवहार।
निश्चय नय से इन तीनोंमय आत्मा ही शिवपुर का मार्ग।।39।।

निज आतम को छोड़ रत्नत्रय पर-द्रव्यों में नहीं रहे।
अत: रत्नत्रयमय आत्मा ही निश्चय से शिवकारण है।।40।।

जीवादिक तत्त्वों की श्रद्धा सम्यग्दर्शन आत्मस्वरूप।
दुरभिनिवेश विमुक्त ज्ञान भी दर्शन सह होता सम्यक्।।41।।

निज पर के स्वरूप का संशय मोह भ्रम रहित करना ज्ञान।
सम्यग्ज्ञान कहें इसको जो विविध भेदमय है साकार।।42।।

जो आकार भेद नहिं करके मात्र ग्रहण करता सामान्य।
करे नहीं विशेषता उनमें उसे शास्त्र कहते दर्शन।।43।।

छद्मस्थों को दर्शनपूर्वक ज्ञान, न हों दोनों उपयोग-
युगपत्, किन्तु केवली प्रभु को एक साथ दोनों उपयोग।।44।।

अशुभ क्रिया का त्याग और शुभ में प्रवृत्ति जानो चारित्र।
समिति गुप्ति व्रत रूप भेद व्यवहार कथन जिनदेव कहें।।45।।

भव कारण के नाश हेतु जो बाह्याभ्यन्तर क्रिया निरोध-
ज्ञानी को होता, वह जानो निश्चय से चारित्र जिनोक्त।।46।।

मुनिवर लहें ध्यान में दोनों मोक्षमार्ग यह नियम अहो!
अत: ध्यान का भलीभाँति तुम यत्न सहित अभ्यास करो।।47।।

विविधध्यान की सिद्धि हेतु यदि चित्त स्थिर करना चाहो।
इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में नहिं मोह-राग अरु द्वेष करो।।48।।

पैंतिस सोलह छह अरु पाँच चार दो एक जपो ध्याओ।
गुरुवाणी से अन्य मन्त्र भी जो परमेष्ठी वाचक हों।।49।।

घाति कर्म चौ नष्ट हुए हैं दर्शन ज्ञान वीर्य सुखरूप।
शुभ तन स्थित शुद्ध आत्मा चिन्तनीय अर्हन्त स्वरूप।।50।।

अष्टकर्म तन-रहित जानते और देखते लोकालोक।
लोक शिखरथित पुरुषाकार आत्मा सिद्ध, ध्यान के योग्य।।51।।

दर्शन ज्ञान प्रधान वीर्य तप चारित पंचाचारों में।
निज-पर को संयुक्त करें वे मुनि आचार्य ध्यान के योग्य।।52।।

जो रत्नत्रय युक्त सदा धर्मोपदेश में लीन रहें।
वे आत्मा हैं उपाध्याय यतिश्रेष्ठ उन्हें हम नमन करें।।53।।

दर्शन ज्ञान सहित जो मुक्ति-मार्गरूप चारित्र अहो।
नित्य शुद्ध है उसे साधते वे मुनि साधु नमूँ उनको।।54।।

जब निरीह वृत्ति से साधु जो कुछ भी चिंतन करते।
हो एकाग्रचित्त तब उनको निश्चय से जिन ध्यान कहें।।55।।

कुछ भी चेष्टा करो न बोलो और चिन्तवन नहीं करो।
जिससे आत्मा अपने में हो लीन उसे वर-ध्यान कहो।।56।।

तप-श्रुत-व्रतधारी आत्मा ही ध्यान-रथ-धुरा को धारें।
अत: ध्यान की प्राप्ति हेतु नित इन तीनों में लीन रहो।।57।।

अल्प श्रुत मुनि नेमिचन्द्र ने द्रव्य संग्रह ग्रन्थ कहा।
दोष रहित श्रुतपूर्ण मुनीश्वर इसे शुद्ध कर करें कृपा।।58।।

(हरिगीतिका)

द्रव्य संग्रह ग्रंथ का अनुवाद यह सम्पन्न है।
इसे हृदयंगम करें जो वे सुनिश्चित भव्य हैं।।
आचार्यवर श्री नेमिचन्द्र गुरु-चरण में है नमन।
यदि भूल कोई हो उसे करिये क्षमा विद्वानगण।।

*****

आत्मप्रशंसा के त्याग की प्रेरणा

आत्मप्रशंसा सदा छोड़ दो, नाश करो नहिं निज यश का।
आत्मप्रशंसा करनेवाला जग में तृणवत् लघु होता।।
विद्यमान गुण भी कहने से, काँजी-मदिरा सम हों नष्ट।
अपनी स्वयं प्रशंसा करने से होता है दोष महत्।।
विद्यमान गुण कहे न जायें तो भी नष्ट नहीं होते।
सूर्य स्वयं गुण कहे न फिर भी जग प्रसिद्ध है उसका तेज।।

– भगवती आराधना, छन्द 364-366

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

।। सम्यग्दर्शन अधिकार ।।

(वीरछन्द)

मंगलाचरण

सकल पापमल प्रक्षालक श्री वर्धमान को करूँ नमन।
लोकालोक प्रकाशन हेतू जिनकी विद्या है दर्पण।।1।।

धर्म का स्वरूप

सकल कर्ममल प्रक्षालक जो सम्यक् धर्म करूँ उपदेश।
जो संसार-दुखों से जीवों को धरता उत्तम सुख में।।2।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण ही धर्म कहें धर्मेश्वर देव।
इनसे जो विपरीत भाव वे भवपद्धति के कारण हैं।।3।।

सम्यग्दर्शन का लक्षण

सच्चे देव-शास्त्र अरु गुरु का आठों अंग सहित श्रद्धान।
तीन मूढ़ता और आठ मद रहित कहा सम्यग्दर्शन।।4।।

आप्त का स्वरूप

दोष अठारह रहित और सर्वज्ञ तथा आगम का ईश।
आप्त नियम से यही, अन्यथा आप्तपना हो सके नहीं।।5।।

क्षुधा तृषा भय जरा रोग मद जन्म मरण विस्मय अरु स्वेद।
मोह-राग-रुष चिंता निद्रा अरति गर्व अरु खेद न, आप्त।।6।।

आप्त के विविध नाम

परम ज्योति परमेष्ठी विमलकृति बिन-आदि मध्य अरु अंत।
सार्व और सर्वज्ञ आप्त के हित-उपदेशी हैं शुभ नाम।।7।।

वीतरागी ही आप्त होते हैं

राग और आत्मार्थ बिना ही आप्त कहें हित का उपदेश।
ज्यों मृदंग क्या रखे अपेक्षा, ध्वनित हुआ वादक कर से।।8।।

सत्शास्त्र का लक्षण

आप्त-कथित श्रुत अनुल्लंघ्य हैं प्रत्यक्षादि विरोध विहीन।
मिथ्या-मार्ग निषेधक, तत्त्व-प्ररूपक सबका हितकारी।।9।।

सच्चे गुरु का लक्षण

विषयों की वांछा नहिं जिनको परिग्रह अरु आरंभ नहीं।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन सदा जो वन्दनीय है गुरु वही।।10।।

सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का वर्णन

तत्त्व यही है, ऐसा ही है, अन्य न, अन्य प्रकार नहीं।
सत्पथ में निश्चल श्रद्धा असिधार-नीरवत् निःशंकित।।11।।

कर्मोदयवश, अंतसहित, दुखमिश्रित और पाप के बीज।
विषय-सुखों में अरुचिपूर्ण श्रद्धा नि:कांक्षित कही गई।।12।।

जो स्वभाव से अशुचि किन्तु है रत्नत्रय से पावन तन।
उसमें ग्लानि रहित गुण-प्रीति निर्विचिकित्सा मनभावन।।13।।

जो दृष्टि दुखमय कुमार्ग से अरु कुमार्गरत जीवों से।
रहे असम्मत असंपृक्त अरु अनुत्कीर्ति[1] वह दृष्टि-अमूढ़।।14।।

जो स्वभाव से निर्मल है उस रत्नत्रय-पथ की निन्दा।
बालाशक्त[2] मनुज-कृत हो, उपगूहन परिमार्जन करना।।15।।

1. वाचनिक प्रशंसा से रहित, 2. अज्ञानी और असमर्थ।

सम्यग्दर्शन या चरित्र से विचलित हों साधर्मीजन।
धर्म-वत्सलों द्वारा पुनर्स्थापन हो स्थितिकरण।।16।।

साधर्मीजन के प्रति जो सद्भाव सहित अरु मायाहीन।
यथायोग्य आदर करना है, वात्सल्य गुण कहें मुनीन्द्र।।17।।

मोह-तिमिर विस्तार दूर कर अपनी शक्ति के अनुसार।
जिन-शासन माहात्म्य प्रकट करना प्रभावना गुण का सार।।18।।

अंगों के पालन में प्रसिद्ध व्यक्ति

अंजन चोर निशंकित अंग में अंग-द्वितीय अनन्तमती।
उद्दायन नृप हैं तृतीय में चौथे में रानी रेवती।।19।।

श्रेष्ठि जिनेन्द्र-भक्त पंचम में षष्ठम वारिषेण कुमार।
सप्तम अष्टम में प्रसिद्ध मुनि विष्णुकुमार मुनि वज्रकुमार।।20।।

सदोष सम्यक्त्व की असमर्थता

अंग-हीन सम्यग्दर्शन है नहिं समर्थ भव-छेदन में।
जैसे अक्षरहीन मन्त्र असमर्थ हरण विष-पीड़ा में।।21।।

तीन मूढ़ता का वर्णन

बालू पत्थर ढेर करें, सरिता सागर करते स्नान।
अग्नि में या गिरि से गिरते, ये सब लोकमूढ़ता जान।।22।।

राग-द्वेष से मलिन कुदेवों की जो होती आराधन-
वर-वांछा[1] अथवा आशा से, देवमूढ़ता कहते जिन।।23।।

परिग्रह-आरंभ-हिंसायुत जो भववर्धक कार्यों में लीन।
कुलिंगियों को करें पुरस्कृत गुरु-मूढ़ वे कहें प्रवीण।।24।।

1. वरदान प्राप्त करने की इच्छा।

आठ मदों के नाम

पूजा ज्ञान जाति कुल ऋद्धि तप बल और शरीर सुजान।
करना इनका गर्व अहो, मद-रहित मुनीश्वर कहते मान।।25।।

मद त्याग की प्रेरणा

मद से गर्वित पुरुष करे जो साधर्मीजन का अपमान।
वह स्वधर्म को करे तिरस्कृत धर्मी बिन नहिं धर्म सुजान।।26।।

सम्पत्ति की असारता

पाप निरोधक रत्नत्रय हो, अन्य सम्पदा का क्या काम?
यदि होता हो पापास्रव तो अन्य सम्पदा से क्या काम?।।27।।

सम्यग्दर्शन की महिमा

यदि चांडाल शरीरी भी हो सम्यग्दर्शन से सम्पन्न।
आदरणीय कहें सुर उसको ढके भस्म से ज्यों अंगार।।28।।

पुण्य-पाप का फल

धर्म-कृपा से श्वान देव हो, देव श्वान हो पाप-प्रभाव।
सम्पति होती वचन अगोचर प्राणी को हो धर्म-प्रभाव।।29।।

मिथ्या देव-शास्त्र-गुरु की वंदना का निषेध

भय आशा अरु नेह लोभ से मिथ्यादेव-शास्त्र-गुरु को।
शुद्ध-दृष्टियुत जीव कभी नहिं नमस्कार या विनय करो।।30।।

सम्यक्त्व की महानता

सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ कहा है क्योंकि ज्ञान अरु चारित्र से।
इसीलिए तो भव-सागर का खेवटिया भी कहा उसे।।31।।

यथा बीज बिन वृक्ष न होता वैसे नहिं सम्यक्त्व बिना-
ज्ञान और चारित की उत्पत्ति-स्थिति-वृद्धि-फल ना।।32।।

निर्मोही गृहस्थ शिव-पथ में, जो मोही वह मुनि नहीं।
मोही-मुनि से श्रेष्ठ कहा है जो गृहस्थ है निर्मोही।।33।।

तीन लोक अरु तीन काल में समकित सम नहिं श्रेय[1] स्वरूप।
मिथ्यादर्शन-सम जीवों को और नहिं अश्रेय स्वरूप।।34।।

नारक पशू नपुंसक नारी अल्पायु दुष्कुल विकलांग।
सम्यग्दृष्टि जीव न होते यद्यपि अव्रतमय जीवन।।35।।

ओज तेज विद्या बल वैभव वीर्य वृद्धि यश पौरुषवान।
सम्यग्दर्शन से पवित्र जो होते हैं नर-श्रेष्ठ महान।।36।।

देव-देवियों में शोभित हों अणिमा आदि गुणों से पुष्ट।
स्वर्गों में चिरकाल रमें वे सम्यग्दृष्टि अरु जिनभक्त।।37।।

नवनिधि चौदह रत्न सुशोभित, मुकुटबद्ध नृप चरण नमें।
सर्व भूमि-पति चक्ररत्न - धारी, होते सम्यग्दृष्टि।।38।।

जिनके चरण-कमल पूजित हैं अमरासुर-नर-मुनिपति[2] से।
अर्थ प्ररूपक, लोकशरण तीर्थंकर होते समकित से।।39।।

अक्षय अव्याबाध निरोगी अजर शोक-भय-शंका हीन।
सर्वोत्कृष्ट ज्ञान सुख वैभव विमल मोक्ष पाते ज्ञानी।।40।।

अतिशय महिमा से मण्डित देवेन्द्र चक्र की महिमा को।
मुकुटबद्ध नृप नमते उस राजेन्द्र चक्र की गरिमा को।
सर्वलोक है शीश झुकाता-धर्मचक्र तीर्थंकर को।
पाकर शिवपुर में शोभित हों भव्य श्री जिन-भक्त अहो।।41।।

1. कल्याण 2. गणधर।

।। सम्यग्ज्ञान अधिकार ।।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

कम या अधिक और विपरीत न माने ज्यों का त्यों हो ज्ञान।
संशय बिन पदार्थ जो जाने, ज्ञानी कहते सम्यग्ज्ञान।।42।।

चारों अनुयोगों का स्वरूप

पुण्यरूप अरु चरित-पुराण कथन करता परमार्थ स्वरूप।
सम्यक्श्रुत प्रथमानुयोग को जाने बोधि समाधि स्वरूप।।43।।
लोकालोक विभाग, काल परिवर्तन, और चतुर्गतिरूप।
मननरूप श्रुत, दर्पणवत् करणानुयोग का जाने रूप।।44।।
मुनियों और गृहस्थों के चारित की उत्पत्ति वृद्धि।
रक्षा का कारण अनुयोग-चरण जाने सम्यक् बुद्धि।।45।।
जीव-अजीवरु पुण्य-पाप अरु, बन्ध-मोक्ष इत्यादि पदार्थ।
है प्रदीप द्रव्यानुयोग, विस्तृत करता श्रुतज्ञान प्रकाश।।46।।

।। सम्यक्चारित्र अधिकार ।।

चारित्र का स्वरूप

मोह-तिमिर क्षय होने से जिसने पाया है दर्शन-ज्ञान।
राग-द्वेष क्षय करने हेतु भव्य लहे चारित्र महान।।47।।
राग-द्वेष मिटने पर अपने आप न हिंसादिक होते।
अभिलाषा बिन कौन पुरुष राजाओं की सेवा करते।।48।।
हिंसा अनृत[1] चौरी मैथुन परिग्रह पाप-पनाले[2] रूप।
ज्ञानी का इन सबको तजना ही सम्यक्चारित्र स्वरूप।।49।।

1. झूठ, 2. गंदे पानी का नाला।

चारित्र के दो भेद

सकल-विकल द्वयभेद चरित है, सकल संगत्यागी मुनिराज-
धारक हैं चारित्र सकल के, विकल चरित्र धरें सागार[1]।।50।।

देशचारित्र के तीन भेद

अणुव्रत गुणव्रत शिक्षाव्रत चारित्र-विकल के तीन प्रकार।
क्रमशः इन तीनों के होते पाँच तीन अरु चार प्रकार।।51।।

पाँच अणुव्रतों का वर्णन

अहिंसाणुव्रत का वर्णन

हिंसा अनृत चोरी और कुशील परिग्रह जो स्थूल।
इनसे होना विरति यही जानो पाँचों अणुव्रत का मूल।।52।।

मन-वच-तन अरु कृत-कारित अनुमोदन से हो जो संकल्प।
त्रस जीवों को नहीं मारना यही अहिंसाव्रत है अल्प[2]।।53।।

छेदन बंधन पीड़ित करना और लादना अतिशय भार।
अन्न-पान नहिं देना ये है पाँच अहिंसा व्रत-अतिचार।।54।।

सत्याणुव्रत का वर्णन

जो स्थूल असत्य न बोले, नहीं अन्य से कहलाये।
अणुव्रती पर-घातक सत्य कहे न स्वयं न कहलाये।।55।।

मिथ्याकथन, रहस्योद्घाटन, मन्त्रभेद कहना साकार।
कूटलेख[3] न्यासापहार[4] ये सत्य अणुव्रत के अतिचार।।56।।

अचौर्याणुव्रत का वर्णन

रखा हुआ या गिरा हुआ या भूला, बिना दिया पर-धन।
स्वयं न ले, नहिं देय अन्य को यह अचौर्यव्रत कहें श्रमण।।57।।

1. गृहस्थ, 2. अहिंसाणुव्रत, 3. झूठे दस्तावेज बनाना, 4. अमानत को हड़पने वाले वचन।

चौरप्रयोग[1] चौरार्थदान[2] सदृश-सन्मिश्र[3] विलोप कहे।
हीनाधिक-विनिमान[4] अचौर्याणुव्रत के अतिचार कहे।।58।।

ब्रह्मचर्याणुव्रत का वर्णन

पर-नारी सेवन न करे न कराये पाप-बन्ध भय से।
यह पर-दार[5]-निवृत्ति या संतोष-स्वदार अणुव्रत है।।59।।

परविवाह करना, अनंग-क्रीड़ा, विटत्व[6] अरु विपुल तृषा।
इत्वरिका[7] सेवन ये पाँचों ब्रह्मचर्य अणुव्रत-अतिचार।।60।।

अपरिग्रह परिमाणुव्रत का वर्णन

धन-धान्यादि परिग्रह की सीमा से ज्यादा चाह न हो।
परिमित परिग्रह या इच्छा-परिमाण अणुव्रत यही अहो।।61।।

अतिवाहन अति संग्रह अति विस्मय अति लोभ कहें जिनराज।
भार-वहन अति पाँचों हैं परिग्रह मर्यादा व्रत-अतिचार।।62।।

अणुव्रतों की महिमा

निरतिचार पाँचों अणुव्रत की निधियाँ देती हैं सुरलोक।
अवधिज्ञान अणिमादि अष्ट गुण दिव्य देह के मिलते भोग।।63।।

अणुव्रतों में प्रसिद्ध व्यक्ति

चांडाल यमपाल तथा धनदेव और वारिषेण कुमार।
नीली जयकुमार ये क्रमशः अणुव्रत पूजा अतिशय प्राप्त।।64।।

पाँच पापों में प्रसिद्ध व्यक्ति

धनश्री सत्यघोष तापस अरु कोतवाल श्मश्रु नवनीत।
क्रमशः हिंसादिक पापों में देते हैं दृष्टान्त मुनीश।।65।।

1. चोरी करने की प्रेरणा देना, 2. चोरी का माल खरीदना, 3. असली वस्तु में नकली वस्तु मिलाना, 4. कम या अधिक तोलना, 5. पर-स्त्री, 6. शरीर से कुचेष्टा करना एवं अश्लील वचन बोलना, 7. व्यभिचारिणी स्त्री।

आठ मूलगुणों के नाम

मद्य-त्याग मधु-मांस-त्याग के साथ अणुव्रत जानो पाँच।
कहें मुनीश्वर सागारों के यही मूलगुण होते आठ।।66।।

गुणव्रतों के लक्षण और भेद

दिग्व्रत और अनर्थ दण्डव्रत भोग-उपभोग करो परिमाण।
मूल-गुणों में वृद्धि के लिए ये गुणव्रत कहते हैं आर्य।।67।।

सूक्ष्म पाप से बचने हेतु करें दिशा की मर्यादा।
आजीवन बाहर नहिं जाऊँ-दिग्व्रत यह संकल्प कहा।।68।।

मकराकर[1] सरिता अटवी[2] अरु पर्वत देश तथा योजन।
दशो दिशाओं की मर्यादा करने हेतु करे साधन।।69।।

अणुव्रतों की महिमा

दिग्व्रत धारक पुरुषों के अणुव्रत की मर्यादा बाहर।
सूक्ष्म पाप भी नहिं होते हैं अत: महाव्रतमय परिणाम।।70।।

प्रत्याख्यान मन्द इतनी कि मुश्किल सत्ता का निरधार।
चरितमोह की परिणति ऐसी अत: महाव्रत का उपचार।।71।।

मन-वच-तन अरु कृत-कारित-मोदन[3] से पूर्णरूप तजना।
हिंसादिक पापों को, यह है व्रत-महान[4] सत्पुरुषों का।।72।।

दिग्व्रत के अतिचार

ऊपर नीचे और धरातल की सीमा का उल्लंघन।
क्षेत्रवृद्धि, सीमा की विस्मृति दिग्व्रत के अतिचार कथन।।73।।

1. समुद्र, 2. घना जंगल 3. अनुमोदना, 4. महाव्रत।

अनर्थदण्ड व्रत का वर्णन

दिग्व्रत सीमा में अप्रयोजनभूत पाप-योगों का त्याग।
यही विरक्ति अनर्थदण्ड से कहते मुनिप्रधान जिनराज।।74।।

पाप-कथन अरु हिंसादान तथा दु:श्रुति और अपध्यान।
अरु प्रमाद चर्या ये पाँचों गणधर कहें अनर्थदण्डान।।75।।

पशु-पीड़ा एवं व्यापार तथा हिंसा अरु छल आरम्भ-
कथा प्रसंगोत्पादन करना पाप कथनमय अनर्थदण्ड।।76।।

फरसा अरु तलवार कुदाली अग्निशस्त्र विष साकल जान।
बुधजन कहें अनर्थदण्ड ये हिंसाकारक वस्तु प्रदान।।77।।

वध बन्धन छेदन का चिन्तन करे द्वेष के कारण से।
और राग से पर-नारी का, निपुण पुरुष अपध्यान[1] कहें।।78।।

आरम्भ संग[2] साहस, मिथ्यापन द्वेष राग मद एवं काम।
इनसे चित कलुषित करते जो शास्त्र, सुनें यह दु:श्रुतिनाम।।79।।

पृथ्वी जल अग्नि वायु-संचार वनस्पति का छेदन।
भ्रमे-भ्रमावे बिना प्रयोजन यह प्रमाद-चर्या जानो।।80।।

अश्लील वचन अरु तन-कुचेष्टा अतिसंग्रह एवं बकवाद।
अविचारित आरम्भ कहे ये अनर्थदण्ड व्रत के अतिचार।।81।।

भोगोपभोग परिमाण व्रत का वर्णन

सीमित विषयों में भी उनमें कम करना अतिशय अनुराग।
आवश्यक विषयों की मर्यादा भोगोपभोग परिमाण।।82।।

पंचेन्द्रिय के विषय अशन इत्यादि भोगकर छोड़े, भोग।
वस्त्रादिक को पुन: पुन: भोगे ये कहलाते उपभोग।।83।।

1. खोटा ध्यान, 2. परिग्रह।

मद्य-मांस-मधु के त्याग की प्रेरणा

जिन-चरणों की शरण प्राप्त जन त्रस-हिंसा करने परिहार-
त्यागें मांस मधु अरु मदिरापान, तजें प्रमाद दुखकार।।84।।

अन्य अभक्ष्यों के त्याग की प्रेरणा

मूली, गीला अदरक, मक्खन नीम-केतकी पुष्प तथा।
ऐसे अन्य पदार्थ त्याज्य, त्रसघात बहुत फल अल्प कहा।।85।।

जो अनिष्ट हैं अनुपसेव्य हैं वह भी त्याग योग्य मानो।
अभिप्रायसहित जो विरति, योग्य विषयों से वह ही व्रत जानो।।86।।

भोगोपभोग परिमाण व्रत के भेद

भोग और उपभोग वस्तु परिमाण कहा है उभय प्रकार।
नियम कहा सीमित समयावधि यम है जीवन भर का त्याग।।87।।

भोजन वाहन शयन स्नान पवित्र विलेपन अंग कुसुम।
पान, वस्त्र, आभूषण, मैथुन, गीत और संगीत मधुर।।88।।

आज एक दिन-रात पक्ष, इक मास और ऋतु[1] तथा अयन[2]।
इस प्रकार से समय विभाजन करके तजना कहा नियम।।89।।

अनुपेक्षा[3] अनुस्मृति[4] अतिलोलुपता अतितृष्णा अतिराग।
विषय-गरल में यह परिणाम भोग-उपभोग व्रतातिचार।।90।।

चार शिक्षाव्रतों का वर्णन

देशव्रत शिक्षाव्रत का वर्णन*

देशावकाशिक[6] सामायिक प्रोषध-उपवास- रु वैयावृत।
इन चारों को जिन-आगम में कहा गया है शिक्षाव्रत।।91।।

1. दो माह 2. छह माह, 3. आदर रखना, 4. भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना, 5. इस ग्रन्थ में आचार्य ने देशव्रत को शिक्षाव्रत में सम्मिलित किया है। 6. देशव्रत।

अणुव्रत धारक श्रावक प्रतिदिन करें काल मर्यादा से।
विस्तृत क्षेत्र करें मर्यादित देशावकाशिक कहें इसे।।92।।

घर एवं छावनी गाँव अरु खेत नदी वन या योजन।
तपोवृद्ध[1] देशावकाश शिक्षाव्रत-सीमा करें स्मरण।।93।।

एक वर्ष अरु अयन, चार महिने, ऋतु, एक माह या पक्ष।
इक नक्षत्र देशव्रत की कालावधि कहते हैं जो प्राज्ञ[2]।।94।।

सीमाओं के अन्त भाग के आगे स्थूल-सूक्ष्म सब पाप।
छूट जायँ इसलिए देशव्रत से महान व्रत[3] अपने आप।।95।।

प्रेषण, शब्द, आनयन[4] अरु रूपाभिव्यक्ति अरु पुद्गलक्षेप।
देशावकाशिक शिक्षाव्रत के ये पाँचों अतिचार कहे।।96।।

सामायिक शिक्षाव्रत का वर्णन

मर्यादा के भीतर बाहर पूर्णतया तजना सब पाप।
समयावधि में यह सामायिक शिक्षाव्रत कहते निष्पाप।।97।।

मुट्ठी अथवा केश, वस्त्र, पर्यंक-बन्ध[5] का है जो काल।
खड्गासन पद्मासन का समयज्ञ कहें सामायिक काल।।98।।

जनविहीन अरु निर्बाधित गृह चैत्यालय अथवा वन हो।
निर्मल बुद्धिमान श्रावक को सामायिक है करने योग्य।।99।।

काय-वचन की चेष्टा अरु मन की कालुषता का परिहार।
सामायिक करना जिस दिन हो एकाशन अथवा उपवास।।100।।

हिंसादिक के त्यागरूप व्रत पूर्ति हेतु आलस्य विहीन।
प्रतिदिन भी सामायिक वृद्धि करें जन यथाविधि चितलीन।।101।।

1. अधिक तप करनेवाले, 2. बुद्धिमान पुरुष, 3. महाव्रत, 4. वस्तु को मँगाना, 5. पालथी बाँधकर बैठना।

नहीं परिग्रह कोई अरु आरम्भ नहीं सामायिक में।
वस्त्रोपसर्ग-मुनिवत्[1] गेही-यतिभाव को प्राप्त करें।।102।।

सामायिक-धारी गृहस्थ धर-अचलयोग अरु मौन धरें।
शीत ऊष्ण अरु दंशमशक परिषह उपसर्ग भी सहन करें।।103।।

मैं हूँ, अशरण अशुभ अनित्य अनात्मरूप दुखमय जग में।
इससे है विपरीत मोक्ष, सामायिकवन्त विचार करें।।104।।

मन-वच-तन की दुष्प्रवृत्ति विस्मरण अनादर भी जानो।
ये पाँचों अतिचार सुनिश्चित सामायिक के हैं मानो।।105।।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का वर्णन

चतुर्दशी तिथि और अष्टमी को चारों प्रकार आहार।
त्याग करें व्रत की वांछा से जानो यह प्रोषध-उपवास।।106।।

पाँच पाप अरु अलंकार आरम्भ सुगन्धित लेप तजे।
गन्ध पुष्प स्नान आदि सबका उस दिन परिहार करे।।107।।

उपवासी उत्कण्ठित होकर धर्मामृत का श्रवण करे-
और करावे, आलस त्यागे, ज्ञान ध्यान में लीन रहे।।108।।

एक भुक्ति को प्रोषध जानो चौ' आहार त्याग उपवास।
पुन: पारणा-दिन एकाशन करना है प्रोषध-उपवास।।109।।

ग्रहण-विसर्जन संस्तर करना बिन देखे अरु बिन शोधे।
विस्मृति और अनादर ये प्रोषध-उपवास-अतिचार कहे।।110।।

वैयावृत्य (अतिथिसंविभाग) का वर्णन

गुणनिधिरूप तपोधन को जो विधि द्रव्य आदि अनुसार।
धर्म-हेतु निरपेक्ष भाव से दान करे वैयावृत सार।।111।।

1. मुनि के ऊपर वस्त्र डालकर उपसर्ग किया गया हो।

पैर दबाना और अन्य भी हो सकता जितना उपकार।
संयमियों का गुणप्रीति से करना भी वैयावृत सार।।112।।

सप्तगुणों से युक्त शुद्ध हो नवधा भक्ति से सम्पन्न।
गृह-कार्यों के आरम्भ रहित आर्यों को देना कहते दान।।113।।

गृह-कार्यों से किया उपार्जित कर्म नष्ट कर देता दान-
गृह-त्यागी को दिया गया, ज्यों जल धोता है रक्त समान।।114।।

उच्च गोत्र तप-निधि वन्दन से, उपासना से हो सम्मान।
भोग दान से, रूप भक्ति से, यश स्तुति से होता प्राप्त।।115।।

योग्य पात्र को उचित समय में अल्प दान भी करे प्रदान।
छाया-वैभव और इष्ट फल प्राणी को वट-बीज समान।।116।।

भोजन औषधि और उपकरण तथा करे आवास प्रदान।
वैयावृत्य कहें विद्वज्जन चार भेद लो इनके जान।।117।।

श्रीषेण नृप और वृषभसेना कौण्डेश और सूकर।
वैयावृत के चार भेद में ये दृष्टान्त करो स्वीकार।।118।।

जिनपूजन की प्रेरणा

काम-धेनु अरु काम-विनाशक प्रभु के चरणों की पूजा।
श्रावक नित-प्रति भक्ति भाव से करें दुख नाशक पूजा।।119।।

राजगृही में हर्ष सहित मेंढक ने एक पुष्प द्वारा।
जिन-चरणों की पूजा का माहात्म्य जगत को बतलाया।।120।।

वैयावृत्य शिक्षाव्रत के अतिचार

हरे पत्र में भोजन रखना विस्मृति और अनादर भाव।
मत्सरत्व ये पाँच कहे जाते वैयावृत के अतिचार।।121।।

।। सल्लेखना अधिकार ।।

सल्लेखना का लक्षण

यदि उपसर्ग बुढ़ापा अरु दुर्भिक्ष और हो अतिशय रोग-
अनिवारित, तो धर्म हेतु तन त्यागरूप सल्लेखन हो।।122।।

समाधिमरण की महिमा

क्योंकि जिनेश्वर ने तप का फल बतलाया लेना संन्यास।
अत: शक्ति अनुसार समाधि-मरण हेतु करणीय प्रयास।।123।।

प्रीति बैर अरु संग-परिग्रह छोड़ शुद्ध मन मधुर वचन-
से परिजन स्वजनों से क्षमा कराये एवं करे स्वयं।।124।।

कृत-कारित-अनुमोदन से पापों की निश्छल आलोचन।
मरणान्तक स्थायी ऐसे महाव्रतों को कर धारण।।125।।

शोक और भय खेद तथा अप्रतीति भाव का त्याग करे।
धैर्योत्साह प्रकट कर श्रुत-अमृत पी चित्त प्रसन्न करे।।126।।

काय सल्लेखना का वर्णन

क्रमश: कवलाहार तजे अरु दुग्धादिक की वृद्धि करे।
फिर क्रमश: दुग्धादि छोड़कर ऊष्ण-जलादिक वृद्धि करे।।127।।

तजकर उष्ण-जलादिक को भी यथाशक्ति करके उपवास।
पूर्ण यत्न से पंच प्रभु में चित् एकाग्र करे तन-त्याग।।128।।

सल्लेखना के अतिचार

जीने या मरने की आशा, भय मित्र-स्मृति और निदान।
सल्लेखना के ये पाँचों अतिचार कहें श्री जिन भगवान।।129।।

मोक्ष का स्वरूप

कोई सर्व दुखों का क्षयकर सुख अनन्त रत्नाकररूप।
शिवसुख भोगें, कोई पाते चिरकालिक अभ्युदय[1] स्वरूप।।130।।

जन्म जरा अरु रोग मरण भय शोक दुख से जो परिमुक्त।
अविनाशी निर्मल सुखमय है नि:श्रेयस निर्वाण स्वरूप।।131।।

दर्शन-ज्ञान अनन्त वीर्य सुख तृप्ति शुद्धि अरु परम उदास-
होकर जन निरवधि निर्-अतिशय[2] मोक्षमहल में करें निवास।।132।।

तीन लोक में हो सम्भ्रान्ति ऐसा यदि होवे उत्पात।
काल कल्प शत बीत जाए पर सिद्धों में होवे न विकार।।133।।

कीट कालिमा रहित कान्तियुत हुए प्रकाशित स्वर्ण समान।
मुक्ति प्राप्त कर त्रिलोकाग्र की चूढ़ामणि-सम शोभावान।।134।।

पूजा अर्थ और आज्ञादिक से त्रिभुवन हो अचरजवान।
लहें धर्म से स्वर्ग संपदा अद्‌भुत काम-भोग बलवान।।135।।

।। श्रावक पद (प्रतिमा) अधिकार ।।

श्रावक की ग्यारह प्रतिमायें कहते हैं श्री जिन भगवान।
पूर्व गुणों से युक्त स्व-गुणमय क्रमविवृद्ध[3] होते थिर जान।।136।।

समकित से है शुद्ध और संसार भोग अरु देह-विरक्त।
प्राप्त पंच गुरु-शरण दार्शनिक श्रावक अष्टमूल गुणवान।।137।।

जो निशल्य अतिचार रहित हो अणुव्रत पाँच शीलव्रत सात-
धारण करता वह व्रतियों में देशव्रती श्रावक विख्यात।।138।।

चौ प्रणाम कायोत्सर्ग अरु यथाजात त्रय-चतुरावर्त[4]।
द्वि-निषद्या[5] त्रययोग शुद्ध सन्ध्या वन्दन सामायिकवन्त।।139।।

महिने के चारों पर्वों में अपनी शक्ति छिपाए बिना।
प्रोषध नियमों में तत्पर वह प्रोषध अनशन प्रतिमावान।।140।।

जो अपक्व फल मूल शाक शाखा करीर अरु कन्द प्रसून।
बीज न खाये दया-मूर्ति वह है सचित्त त्यागी गुणवन्त।।141।।

1. स्वर्गादिक के भोग, 2. हीनाधिकता से रहित, 3. क्रमश: वृद्धि को प्राप्त, 4. चार बार तीन-तीन आवर्त करना, 5. दो बार बैठकर नमस्कार करना।

अन्न-पान अरु खाद्य लेह्य आहार रात्रि में नहीं करे।
रात्रिभुक्ति त्यागी प्रतिमायुत सब जीवों पर दया करे।।142।।

यह तन दुर्गन्धित मल-बीज तथा मल-योनि और वीभत्स[1]।
मल का झरना जान ब्रह्मचारी रहते हैं काम-विरत।।143।।

हिंसाकारक खेती सेवा आरम्भ व्यापारादि सभी।
त्याग करे जो वही कहा आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी।।144।।

दश प्रकार की बाह्य वस्तुओं में ममता तज हो निर्मम।
स्वस्थ और संतोषी का चित परिग्रह से सम्पूर्ण विरत।।145।।

जो आरम्भ परिग्रह अथवा सब ही लौकिक कार्यों की।
करे न अनुमोदन सम-धी[2] अनुमति त्यागी प्रतिमाधारी।।146।।

जो घर छोड़ मुनिवन जाकर व्रत लेता है गुरु के पास।
भैक्ष्याशन अरु चेल-खण्डधर[3] तप करता श्रावक उत्कृष्ट।।147।।

धर्म के ज्ञाता का लक्षण

पाप जीव का शत्रु, धर्म का बन्धु, करे निश्चय ऐसा।
जो श्रावक सर्वागम जाने निश्चित वह श्रेयो ज्ञाता।।148।।

रत्नत्रय का फल

दर्शन-ज्ञान-चरणमय रत्नकरण्ड भाव जो प्राप्त करे।
तो वह त्रिभुवन पति-इच्छा से सर्व अर्थ की सिद्धि लहे।।149।।

जिन-चरणों का अवलोकन करने वाली समकित-लक्ष्मी।
मुझे सुखी कर दे जैसे कामी को करती है कामिनी।।
शुद्ध शील माता ज्यों सुत को, शीलव्रती कन्या कुल को,
पालन और पवित्र करे त्यों हे समकित! तुम मुझे करो।।150।।

*****

1. ग्लानि उत्पन्न करनेवाला, 2. समान बुद्धि का धारक, 3. वस्त्र का टुकड़ा रखने वाला।

पुरुषार्थ सिद्धि उपाय

पीठिका

मंगलाचरण

(वीरछन्द)

जयवंत रहो वह परम-ज्योति जिसमें दर्पणतल-वत् झलकें-
सकल पदार्थ-समूह जगत के गुण-अनंत पर्याय सहित।।1।।

इष्ट आगम का स्तवन

जन्मांधों का हस्ति-विधान निवारक, परमागम का प्राण।
नयविलसित[1]-रु विरोध-विनाशक अनेकांत को करूँ नमन।।2।।

ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा

त्रिभुवन-चक्षु परमागम को जान अनेक प्रयत्नों से।
मुझसे हो उद्धार ग्रंथ पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय बुध हेतु।।3।।

वक्ता का लक्षण

मुख्य और उपचार कथन से नाशें शिष्यों का अज्ञान।
उभय-नयों के ज्ञाता जग में करें प्रवर्तन तीर्थ महान।।4।।

नयों की उपयोगिता

निश्चय को भूतार्थ और हम अभूतार्थ-व्यवहार कहें।
भूतार्थ-बोध से विमुख हुआ प्रायः सारा संसार अरे!।5।।

1. नयों से सुशोभित, 2. स्वरूप।

उपदेश की पात्रता रहित श्रोता

अज्ञानी को बोध कराने मुनिवर कहते हैं व्यवहार।
उसको ही परमार्थ समझते जो जन, वे उपदेश-अपात्र।।6।।

परमार्थ से अपरिचित श्रोताओं का श्रद्धान

जिसने शेर नहीं देखा वह बिल्ली को ही समझे शेर।
जो निश्चय को नहिं जाने उनको व्यवहार बने निश्चय।।7।।

पात्र श्रोता का लक्षण

जो व्यवहार और निश्चय का तत्त्व जानकर हों मध्यस्थ।
जिनवर के उपदेशों का पूरा फल पाते हैं वे शिष्य।।8।।

।। ग्रंथ प्रारंभ ।।

पुरुष का स्वरूप

(वीरछन्द)

पुरुष आत्मा चेतनमय स्पर्श-गंध-रस-वर्ण विहीन।
व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य समुदायी गुणों और पर्याय सहित।।9।।

आत्मा में रागादिक की उत्पत्ति कैसे होती है?

वह अनादि से परिणमता है ज्ञान-विवर्तन रागस्वरूप।
अपने रागादिक परिणामों का कर्ता-भोक्ता चिद्रूप।।10।।

सम्यक् पुरुषार्थ की सिद्धि का उपाय

निज निष्क्रिय स्वरूप को पाकर होता जब विभाव से पार।
तब सम्यक् पुरुषार्थ प्रयोजन-सिद्धि को वह होता प्राप्त।।11।।

कर्म-बंध का कारण

जीव-भाव का निमित मात्र पाकर अन्य पुद्गल स्कंध।
कर्म-भाव से परिणमते स्वयमेव, बँधें आत्मा के संग।।12।।

रागादि की उत्पत्ति में कर्मोदय का निमित्तपना

चैतन्यरूप निज रागादिक भावों में परिणमता स्वयमेव।
आत्मा को पौद्गलिक कर्म तब निमित मात्र होते स्वयमेव।।13।।

रागादि में एकत्व बुद्धि संसार का मूल कारण

इसप्रकार यह जीव, कर्मकृत भावों से संयुक्त नहीं।
अज्ञानी को मिले हुए-सा भासित हो, भव-बीज यही।।14।।

रत्नत्रय ही पुरुषार्थ की सिद्धि का उपाय

निज स्वरूप का सम्यक् निर्णय कर, विरुद्ध-श्रद्धान विनाश।
निज में ही अविचल रह जाना यह पुरुषार्थ सिद्धि का मार्ग।।15।।

रत्नत्रयधारी मुनिराजों की अलौकिक वृत्ति

इस पथ पर चलनेवाले मुनि पापाचारों को तजकर।
होती उनकी वृत्ति अलौकिक पर से पूर्ण विरत होकर।।16।।

उपदेश देने का क्रम

बार-बार कहने पर भी जो धर न सकें संपूर्ण विरति।
इसी हेतु से एकदेश-विरति उन जीवों को कथनीय।।17।।

क्रम-भंग करने वाले उपदेशक की निंदा

मुनिव्रत का उपदेश न देकर देता श्रावक-व्रत उपदेश।
वह मति-हीन जिनेश्वर-मत में दंडित करने योग्य कहें।।18।।

अति उत्साहित शिष्य ठगाया हो संतुष्ट तुच्छ पद में।
क्योंकि किया क्रम-भंग कथन उपदेश मूढ़ उस दुर्मति ने।।19।।1

।। श्रावकधर्म का वर्णन ।।

।। सम्यग्दर्शन अधिकार ।।

गृहस्थों की भी रत्नत्रय धारण करने की प्रेरणा

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र त्रयात्मक मुक्ति-मार्ग कहा।
यथाशक्ति श्रावक को भी है नित्य सेवने योग्य कहा।।20।।

सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्रकट करने की प्रेरणा

सर्वप्रथम संपूर्ण यत्न से सम्यग्दर्शन धारण योग्य।
क्योंकि उसी के होने पर ही ज्ञान और चारित होते।।21।।

सम्यग्दर्शन का लक्षण

जीवाजीवादिक तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदा कर्तव्य।
जो विरुद्ध अभिप्राय रहित है आत्मा का स्वरूप ज्ञातव्य।।22।।

सम्यक्त्व के आठ अंगों का वर्णन

1. नि:शंकित अंग

सर्वज्ञों का कहा गया यह अनेकांतमय वस्तुस्वरूप।
क्या यथार्थ है या असत्य वह - ऐसी शंका करो नहीं।।23।।

2. नि:कांक्षित अंग

इस-भव में ऐश्वर्य संपदा पर-भव में चक्री केशव[1]।
आदि पदों एवं ऐकांतिक अन्य धर्म की चाह न कर।।24।।

3. निर्विचिकित्सा अंग

क्षुधा तृषा सर्दी गर्मी आदिक दुखरूप अवस्था में।
कभी ग्लानि कर्तव्य नहीं है विष्टा आदि मलिनता में।।25।।

1. नारायण

4. अमूढ़दृष्टि अंग

शास्त्राभास, लोक में, धर्माभास, देवताभासों में।
तत्त्व-रुचि संपन्न पुरुष श्रद्धान मूढ़ता रहित करें।।26।।

5. उपबृंहण अंग

मार्दवादि भावों से निज-धर्मों की नित अभिवृद्धि करें-
उपबृंहण गुण हेतु, तथा पर-दोषों को भी गुप्त रखें।।27।।

6. स्थितिकरण अंग

काम-क्रोध-मद आदि भाव यदि धर्म-मार्ग से चलित करें।
तो श्रुत के अनुसार स्व-पर की स्थिरता का यत्न करें।।28।।

7. वात्सल्य अंग

शिव-सुख साधनभूत अहिंसादिक समस्त जो धर्म धरें।।
उन साधर्मी जन में सदा परम वात्सल्य-रु प्रीति धरें।।29।।

8. प्रभावना अंग

रत्नत्रय के बल से आत्मा की प्रभावना नित्य करें।
जिनपूजन-तप-दान और विद्या से धर्म-प्रभाव करें।।30।।

।। सम्यग्ज्ञान अधिकार ।।

सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान का सेवन करना चाहिए

सम्यग्दर्शन का आश्रय कर सम्यग्ज्ञान उपास्य कहा-
युक्ति और आम्नाय योग से, आत्महितार्थ सुकार्य सदा।।31।।
दर्शन का अविनाभावी है किंतु पृथक् आराधन इष्ट।
दोनों के लक्षण न्यारे हैं इसीलिए दोनों हैं भिन्न।।32।।

ज्ञान को सम्यग्दर्शन के बाद कहने का कारण

सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहे हैं कारण-कार्य जिनेश्वर ने।
इसीलिए सम्यग्दर्शन के बाद ज्ञान-आराधन हो।।33।।

सम्यग्दर्शन और ज्ञान में कारण-कार्यपना

एक साथ ही दोनों होते फिर भी कारण-कार्य विधान -
भले प्रकार घटित होता है दीपक और प्रकाश समान।।34।।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

सम्यक् अनेकांत-धर्मी, तत्त्वों का निर्णय करने योग्य।
संशय, विभ्रम और विमोह-विहीन, आत्म-स्वरूप कहो।।35।।

सम्यग्ज्ञान के आठ अंगों का वर्णन

शब्द अर्थ अरु उभयशुद्धि हो काल विनय एवं उपधान।
बहुमान समन्वित हो आराधन बिना छिपाये गुरु का नाम।।36।।

।। सम्यक्चारित्र अधिकार ।।

सम्यग्ज्ञान के पश्चात् चारित्र अंगीकार करने की प्रेरणा

दर्शनमोह तजा, तत्त्वों को जाना सत्य ज्ञान द्वारा।
सदा अकंपित पुरुषों ने सम्यक्चारित स्वीकार किया।37।।

सम्यक्चारित्र के पूर्व सम्यग्ज्ञान की अनिवार्यता

अज्ञान सहित चारित्र प्राप्त नहिं कर सकता है सम्यक् नाम।
इसीलिए चारित्राराधन सत्य ज्ञान के ही पश्चात्।।38।।

चारित्र का लक्षण

क्योंकि चारित होता है सावद्ययोग का कर परिहार।
सकल कषाय-विहीन विशद, पर से विरक्त अरु आत्मस्वभाव।।39।।

चारित्र के भेद

हिंसा अनृत चोरी और अब्रह्म परिग्रह का परित्याग।
सकल-देश अरु एक-देश करने से चारित्र उभय प्रकार।।40।।

इन दोनों प्रकार के चारित्र धारकों का वर्णन

सर्व-देश त्यागी मुनिवर नित समयसार में लीन रहें।
एक-देश विरति में लगे हुए श्रावक आराधक हैं।।41।।

।। अहिंसाणुव्रत का विस्तृत वर्णन ।।

पाँचों पाप हिंसारूप ही हैं

आत्मा के परिणाम घातते, अतः पाप सब हिंसा हैं।
वचन असत्यादिक तो केवल शिष्य-बोध के लिए कहें।।42।।

हिंसा की परिभाषा

द्रव्य-भाव प्राणों का व्यपरोपण कषाय-भावों द्वारा।
निश्चयनय से हिंसा है, यह भलीभाँति तय किया गया।।43।।

निश्चय से हिंसा और अहिंसा का लक्षण

रागादिक उत्पन्न न हों निश्चय से यही अहिंसा है।
उनकी ही उत्पत्ति हिंसा, यही जिनागम सार कहें।।44।।

हिंसा के लक्षण में अतिव्याप्ति दोष

युक्ताचरण सहित संतों को रागादिक परिणाम बिना।
मात्र प्राण-व्यपरोपण से किंचित् भी हिंसा नहीं कहा।।45।।

हिंसा के लक्षण में अव्याप्ति दोष

यत्नाचार रहित जीवों की हो प्रवृत्ति रागादि सहित।
प्राणी मरें बचें अथवा, पर निश्चित ही हिंसा होती।।46।।

जीवों के प्राणघात किए बिना भी हिंसा हो सकती है

क्योंकि जीव कषायभाव से खुद ही खुद का घात करे।
तत्पश्चात् अन्य जीवों का घात भले हो या नहिं हो।।47।।

हिंसा से विरक्ति की प्रेरणा

हिंसा से अविरक्ति या परिणमन करे तो भी हिंसा।
अतः प्रमत्तयोग में शाश्वत प्राणघात सद्भाव कहा।।48।।

हिंसा के आयतनों से बचने की प्रेरणा

निश्चय से किंचित् भी हिंसा पर के कारण नहिं होती।
तो भी भाव-विशुद्धि हेतु हिंसायतनों का त्याग करें।।49।।

हिंसा के संदर्भ में निश्चयाभास का निषेध

जो निश्चय को नहीं जानता मात्र उसी का आश्रय ले।
बाह्य क्रिया में हुआ आलसी मूर्ख क्रिया का नाश करे।।50।।

द्रव्यहिंसा और भावहिंसा संबंधी विविध भंगों का वर्णन

एक जीव नहिं हिंसा करता फिर भी भोक्ता हो फल का।
और दूसरा हिंसा करके भी नहिं भोक्ता हो फल का।।51।।

एक जीव को थोड़ी हिंसा उदय काल में बहु-फल दे।
अन्य जीव को बहु-हिंसा भी उदय समय थोड़ा फल दे।।52।।

मिलकर हिंसा करें जीव, पर उदय समय फल मिले विचित्र।
वही किसी को बहु-फल देती और अन्य को थोड़ा फल।।53।।

फल देती है कोई पहले, करते समय, कोई पश्चात्।
आरंभ करे, पर करे न हिंसा, फल हो भावों के अनुसार।।54।।

एक जीव हिंसा करता है पर फल भोगें जीव अनेक।
बहुत जीव हिंसा करते हैं किंतु भोगता है फल एक।।55।।

किसी पुरुष को उदय काल में हिंसा फल दे हिंसा का।
और अन्य नर को वह देती है फल विपुल-अहिंसा का।।56।।

कोइ अहिंसा-उदय काल में हिंसा का फल है पाता।
तथा अहिंसा का फल देती इसी पुरुष को है हिंसा।।57।।

नयचक्र ज्ञाता गुरु ही शरण हैं

ऐसे दुर्गम विविध भंग-कानन में पथ भूले नर को।
जो प्रबुद्ध नयचक्र संचरण में उन गुरु की शरणा हो।।58।।

नयचक्र की महिमा

जिनवर का नयचक्र दुरासद[1] है अति तीक्ष्ण धारवाला।
यदि अज्ञानी जीव चलाये उसका ही मस्तक कटता।।59।।

हिंसा के त्याग की प्रेरणा

हिंसक हिंसा हिंस्य और हिंसा-फल को यथार्थ जाने।
संवर में उद्यमी पुरुष अपनी शक्ति अनुसार तजे।।60।।

हिंसा के त्याग हेतु आवश्यक कार्य

अष्ट मूलगुण धारण की प्रेरणा

सर्वप्रथम मधु मांस मद्य अरु पाँच उदुम्बर फल त्यागें।
वे नर यत्नपूर्वक जो इस हिंसा से बचना चाहें।।61।।

मदिरा-पान के दोषों का वर्णन

मदिरा मन को मोहित करती मोही भूलें धर्म अरे!
जो भूला है धर्म, निडर हो हिंसा का आचरण करे।।62।।

बहु-रस से उत्पन्न जीव की योनि कही जाती मदिरा।
मदिरा पीने वालों को निश्चित होती उनकी हिंसा।।63।।

मान ग्लानि भय हास्य अरति क्रोधादि शोक अरु काम सभी।
हिंसा की पर्याय जानिये मदिरा के अति निकट सभी।।64।।

1. दुस्साध्य

मांस-भक्षण के दोषों का वर्णन

प्राणघात के बिना मांस की उत्पत्ति हो सके नहीं।
अतः मांसभक्षी नर को अनिवार्यरूप हिंसा होती।।65।।

यद्यपि स्वयं मृतक वृषभादिक का भी मांस मिले जग में।
किंतु वहाँ भी उसके आश्रित जीवों की हिंसा होती।।66।।

कच्ची पक्की तथा पक रही मांसपेशियों में भी तो।
उसी जाति के सम्मूर्छन जीवों का भी उत्पादन हो।।67।।

कच्चे अथवा पके मांस को खाता है या छूता है।
वह एकत्रित विविध जाति के जीवों को ही हनता है।।68।।

मधु-सेवन के दोषों का वर्णन

मधु की एक बूँद भी मधु-मक्खी हिंसा से होती है।
अतः मूढ़ जो मधु खाता है वह अति-हिंसा करता है।।69।।

मधु-छत्ते से स्वयं टपकते मधु को भी जो ग्रहण करे।
उसमें आश्रयभूत जीव का घात, अतः हिंसा होवे।।70।।

मद्य, मांस, मधु एवं मक्खन के त्याग की प्रेरणा

मद्य मांस मधु एवं मक्खन इन चारों में महा-विकार।
व्रती पुरुष भक्षण न करें उनमें सवर्ण जीवों का वास।।71।।

पाँच उदुंबर फल के दोषों का वर्णन

उदुंबर और कठुंबर पाकर बड़-फल अरु पीपल-फल भी -
त्रसजीवों की खान, अतः उनके भक्षण में हिंसा ही।।72।।

इन्हें सुखाकर कुछ दिन में यदि त्रस-विहीन करके खायें।
तो भी तीव्र राग के कारण खाने में हिंसा ही है।।73।।

दुखदायक, दुस्तर, पापों के कारण हैं ये आठ पदार्थ।
इन्हें त्याग कर निर्मल मति नर होते जिन-उपदेश सुपात्र।।74।।

हिंसा आदि के त्याग का विधान

कृत-कारित-अनुमोदन मन-वच-तन से नवधा कहा गया।
सामान्य त्याग यह कहा गया अरु विविधरूप अपवाद कहा।।75।।

जो जीव अहिंसा की महिमा सुनकर भी हिंसा तज न सकें।
वे भी त्रसजीवों की हिंसा का परित्याग अवश्य करें।।76।।

स्थावर जीवों की हिंसा में भी स्वच्छंदता का निषेध

योग्य विषय-सेवक गृहस्थ से अल्प स्थावर का हो घात।
किंतु शेष एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा का हो परित्याग।।77।।

अहिंसा धर्म पालन करते हुए सावधानी

अमृतदायी परम अहिंसारूप रसायन करके प्राप्त।
अज्ञानी का वर्तन लखकर हो नहिं आकुलता को प्राप्त।।78।।

हिंसा में धर्म प्रतिपादन करनेवाली कुयुक्तियों का निराकरण

धर्म सूक्ष्म है अतः धर्म के लिए न हिंसा में है दोष-
ऐसे धर्ममूढ़ होकर भी कभी न मारे जीवों को।।79।।

धर्म देवता से होता है अतः उन्हें सर्वस्व प्रदेय-
ऐसी दुर्विवेक बुद्धि से भी हिंसा नहिं कही विधेय।।80।।

पूज्य जनों के लिए घात बकरे आदिक का है निर्दोष-
यह विचार कर अतिथि-जनों के लिए घात नहिं करने योग्य।।81।।

बहुत जीव के घात अपेक्षा एक जीव से हो उत्पन्न-
भोजन अच्छा - यह विचार कर बड़े जीव का घात अयोग्य।।82।।

बहुत जीव की रक्षा हो यदि एक जीव का घात करें-
यह विचार कर हिंसक जीवों की भी हिंसा नहीं करें।।83।।

बहुत जीव के घातक करें उपार्जित जीवन में बहु पाप।
उन पर करुणा करके उनकी भी हिंसा का करें न कार्य।।84।।

बहुत दुखी को मारें तो वह शीघ्र दुखों से मुक्ति लहे-
इस विचाररूपी कृपाण से दुखियों की हिंसा न करें।।85।।

बड़े कष्ट से सुखी हुआ जो पर-भव में भी सुखी रहे-
यह कुतर्क तलवार ग्रहण कर सुखियों की हिंसा न करे।।86।।

बहु-प्रयत्न से सुगति प्रदायक सार-समाधि को उपलब्ध।
गुरु का मस्तक नहिं काटें, जो शिष्य धर्म के हैं वांछक।।87।।

किंचित् धन-लोभी अरु शिष्यों में उत्पन्न करे विश्वास।
खारपटिक घटचटक-मोक्ष मत का न कभी करना श्रद्धान।।88।।

यदि भूखा नर खड़ा सामने भोजन की अभिलाषा से।
तन का मांस उसे देने के लिए नहीं निज-घात करे।।89।।
गुरु नयभंग-विशारद की करके उपासना प्राप्त किया-
जिनमत रहस्य, फिर कौन सुधी हो धर्म-अहिंसामूढ़ धिया।।90।।

।। सत्याणुव्रत का वर्णन ।।

असत्य की परिभाषा

वचन अन्यथा, स्व-पर अहितकारी, प्रमाद के कारण से -
बोले तो वह है असत्य उसके हैं चार प्रकार कहे।।91।।

असत्य का प्रथम भेद : सत्य का अपलाप

स्व-द्रव्यादि चतुष्टय से हो विद्यमान, पर करे निषेध।
यह पहला असत्य कहलाता देवदत्त हो, करे निषेध।।92।।

असत्य का द्वितीय भेद : असत् का प्रतिपादन

परद्रव्यादि चतुष्टय से है असत् रूप ही वस्तुस्वरूप।
किंतु उसे सत् कहता दूजा अनृत यथा यह है घटरूप।।93।।

असत्य का तीसरा भेद : अन्यथा निरूपण

स्वचतुष्टय से विद्यमान है फिर भी कहे अन्यथारूप।
यह है तीजा असत्-वचन, ज्यों कहे बैल को अश्व, स्वरूप।।94।।

असत्य का चौथा भेद : गर्हित वचन

निंदनीय अरु पापरूप अप्रिय वचनों का करे प्रयोग।
सामान्य रूप से तीन भेद हैं, चौथा अनृत वचन अयोग्य।।95।।

दुष्ट हास्य अरु निंदाकारक कर्कश मिथ्या श्रद्धारूप।
और अन्य जो श्रुत-विरुद्ध हैं वे सब गर्हित निंद्य स्वरूप।।96।।

हिंसा-पोषक असत्य का स्वरूप

छेदन-भेदन मारण शोषण चोरी अरु हिंसक व्यापार।
जीवों की हिंसामय वर्तन करें अतः सावद्य कहा।।97।।

अप्रिय असत्य का स्वरूप

अरति भीति या खेद बैर अरु शोक कलह संताप करें।
और अन्य भी इसप्रकार के वचन सभी अप्रिय अश्रेय।।98।।

असत्य वचन में हिंसा का सद्भाव

उपर्युक्त सब ही वचनों में कारण है प्रमाद-व्यापार।
अतः असत्य वचन में भी हिंसा का है निश्चित अवतार।।99।।

सब असत्य वचनों में कारण कहें प्रमत्त-योग जिनराज।
किंतु असत्य नहीं, यदि कोई हेय-ग्राह्य का करे सु-वाद।।100।।

असत्य वचन के त्याग की प्रेरणा

भोगोपभोग साधन सावद्य-वचन जो पुरुष न छोड़ सकें।
वे भी शेष सभी असत्य-भाषण का नित-प्रति त्याग करें।।101।।

।। अचौर्याणुव्रत का वर्णन ।।

चोरी की परिभाषा

बिना दिये ही वस्तु-ग्रहण करना प्रमाद के योगवशात्।
चोरी यही और वध का कारण होने से है हिंसा।।102।।

चोरी में भी हिंसा का सद्भाव

धनादि पदार्थ मनुष्यों के बहिरंग प्राण, यह जगत प्रसिद्ध।
जो धन को हरता है उसने प्राण हरे - यह होता सिद्ध।।103।।

हिंसा एवं चोरी में अव्याप्ति दोष नहिं होता है।
पर-द्रव्यों के हरने में होता प्रमाद तो हिंसा है।।104।।

वीतराग नर द्रव्यकर्म-नोकर्म ग्रहण में चोर नहीं।
क्योंकि प्रमाद नहीं दोनों में इसीलिए अव्याप्ति नहीं।।105।।

चोरी के त्याग का विधान

जो नर अन्य जनों द्वारा बिन-दिया जलादि न छोड़ सकें।
वे नर शेष सभी अदत्त वस्तु का त्याग अवश्य करें।।106।।

।। ब्रह्मचर्याणुव्रत का वर्णन ।।

अब्रह्म का स्वरूप

वेद-राग से प्रेरित होकर मैथुन क्रिया अब्रह्म कही।
उसमें हो सर्वत्र प्राणि-वध तो अवश्य हिंसा होती।।107।।

मैथुन में हिंसा का सद्भाव

जैसे गरम शलाका से तिल-नाली में तिल भुँज जाते।
वैसे मैथुन समय योनि के बहुत जीव निश्चित मरते।।108।।

अनंग क्रीड़ा में हिंसा का सद्भाव

और काम के तीव्र राग से जो अनंग क्रीड़ा होती।
उसमें भी रागादि तीव्र होने से हिंसा निश्चित ही।।109।।

कुशील के त्याग का क्रम

जो नर तीव्र मोह के कारण निज वनिता नहिं छोड़ सकें।
वे नर अन्य समस्त स्त्रियों का सेवन अवश्य छोड़ें।।110।।

।। अपरिग्रह-अणुव्रत का स्वरूप ।।

परिग्रह की परिभाषा

यह जो मूर्च्छामय परिणति है वही परिग्रह है जानो।
मोहोदय से हुए ममत्व भाव को ही मूर्च्छा जानो।।111।।

ममत्व परिणाम ही वास्तविक परिग्रह है

परिग्रह का लक्षण मूर्च्छा है इसमें व्याप्ति घटित होती।
क्योंकि मूर्च्छावान परिग्रह सहित, बाह्य परिग्रह बिन भी।।112।।

बाह्य परिग्रह भी मूर्च्छा का निमित्त है

यदि ऐसा है तो बहिरंग परिग्रह का अस्तित्व नहीं।
किंतु बाह्य-संग में मूर्च्छा का निमितपना है निश्चित ही।।113।।

वीतरागी पुरुषों को कार्माण वर्गणा के ग्रहण में भी मूर्च्छा नहीं

बाह्य परिग्रह में अतिव्याप्ति है यदि ऐसी शंका हो।
कर्म-ग्रहण में मूर्च्छा होती नहीं, कषाय सहित नर को।।114।।

परिग्रह के भेद

परिग्रह के दो भेद कहे हैं अंतरंग एवं बहिरंग।
अंतरंग के भेद चतुर्दश दो प्रकार का है बहिरंग।।115।।

अंतरंग परिग्रह के चौदह भेद

मिथ्यादर्शन और वेद-त्रय हास्यादिक छह दोष सहित।
चार कषाय मिलाकर होते चौदह भेद अंतरंग के।।116।।

बाह्य परिग्रह के दोनों भेदों में हिंसा का सद्भाव

बाह्य परिग्रह दो प्रकार का होता है सचित्त अचित्त।
सब में हिंसा निश्चित होती अतः नहीं हिंसा विरहित।।117।।

अपरिग्रह में ही अहिंसा संभव है

उभय-परिग्रह त्याग अहिंसा, कहते जिन-शासन मर्मज्ञ।
उभय-परिग्रह का धारण करना है हिंसा कहते विज्ञ।।118।।

दोनों परिग्रहों में हिंसा का सद्भाव

अंतरंग-संग हिंसा का पर्याय अतः हिंसा है सिद्ध।
बाह्य-परिग्रह में मूर्च्छा ही, हिंसा सिद्ध करे निश्चित।।119।।

ममत्व परिणामों में विशेषता

ऐसा है तो बिल्ली और हिरण-सुत में क्या अंतर है?
यह शंका न करो क्योंकि मूर्च्छा का उनमें अंतर है।।120।।

हरी घास खाने वाले मृग-शावक में है मूर्च्छा मंद।
मूषक-समूह भक्षक बिल्ली में मूर्च्छा होती सदा अमंद।।121।।

कारण की विशेषता से हो कार्य-विशेष सिद्धि निर्बाध।
दूध और शक्कर दोनों में है मिठास का भेद अबाध।।122।।

कम मीठा है दूध अतः उसमें रुचि भी होती है मंद।
और अधिक मीठी शक्कर में रुचि करते हैं पुरुष अमंद।।123।।

परिग्रह त्याग का विधान

मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के त्याग की प्रेरणा

तत्त्वार्थों के अश्रद्धान में जोड़ा, प्रथम तजो मिथ्यात्व।
सम्यग्दर्शन चुरा लिया है ऐसी पहली चार कषाय।।124।।

अप्रत्याख्यानावरणी कषाय के त्याग की प्रेरणा

फिर दूसरी कषाय चौकड़ी तजकर धरो देश चारित्र।
क्योंकि यही कषायें निश्चित सदा रोकती देश चरित्र।।125।।

निज शक्ति अनुसार मार्दव शौच संयमादिक द्वारा।
शेष सभी अभ्यंतर परिग्रह का परिहार सदा करना।।126।।

बाह्य परिग्रह के त्याग का क्रम

हो सचित्त अथवा अचित्त सब बाह्य परिग्रह तजने योग्य।
क्योंकि उन्हीं के संग से होता निंद्य असंयम भाव अयोग्य।।127।।

यदि धन-धान्य गृहादिक परिग्रह को मनुष्य नहिं छोड़ सकें।
तो भी उसे करें कम क्योंकि त्याग रूप ही वस्तु स्वरूप।।128।।

रात्रिभोजन त्याग की प्रेरणा

क्योंकि रात्रि में भोजन करने वाले को हिंसा अनिवार्य।
इसीलिए हिंसा का त्यागी करे रात्रिभोजन का त्याग।।129।।

हिंसा निश्चित है अत्याग में तीव्र राग के उदयवशात्।
तो हिंसा क्यों उन्हें न होगी जो भोजन करते दिन-रात।।130।।

यदि ऐसा है तो दिन में ही कर दें भोजन कर परित्याग।
और रात्रि में करें अशन तो फिर हिंसा न होगी सदा।।131।।

नहीं, क्योंकि दिन-भोजन से निशि-भोजन में है तीव्र कषाय।
यथा अन्न के ग्रास-ग्रहण से मांस-ग्रहण में तीव्र कषाय।।132।।

सूर्य-प्रकाश बिना निशि-भोजी यदि दीपक का करे प्रकाश।
तो भी उसमें रहे सूक्ष्म जीवों को बचा नहीं सकता।।133।।

अधिक कहें क्या? जो नर मन-वच-तन से निशिभोजन त्यागें।
स्वयंसिद्ध हो गया कि वे नर सदा अहिंसाव्रत पालें।।134।।

इस प्रकार जो निज-हितकामी, रत्नत्रय शिवपथ है।
चलें निरंतर उस पथ पर वे अल्प काल में मुक्ति लहें।।135।।

शीलव्रतों के पालन की प्रेरणा

कोट नगरवत् गुणव्रत शिक्षाव्रत रक्षक हैं अणुव्रत के।
इसीलिए अणुव्रत पालन के हेतु शीलव्रत को धारें।।136।।

दिग्व्रत का स्वरूप

सभी दिशाओं में प्रसिद्ध स्थानों की पहचान करे।
जीवन भर उनके आगे नहिं जाने का संकल्प करे।।137।।

दिग्व्रत पालन करने का फल

इसप्रकार मर्यादित थल में ही जो आवागमन करे।
उससे बाहर सकल असंयम विरहित पूर्ण अहिंसक है।।138।।

देशव्रत का स्वरूप

दिग्व्रत की मर्यादा में भी ग्रामादिक का निश्चय कर।
नियत समय तक इनसे बाहर आवागमन निवारण कर।।139।।

इसप्रकार बहुक्षेत्र त्याग से वह निर्मल मति उसी समय।
वहाँ हुई हिंसा का त्यागी अतः विशेष अहिंसामय।।140।।

।। अनर्थदण्ड त्याग गुणव्रत का स्वरूप ।।

अपध्यान अनर्थदण्ड त्याग व्रत का स्वरूप

जीत-हार या चोरी-युद्ध-शिकार-परस्त्री सेवन का।
चिंतन कभी न करना क्योंकि इनका फल है केवल पाप।।141।।

पापोपदेश अनर्थदण्ड त्याग व्रत का स्वरूप

सेवा शिल्प कला लेखन या शिक्षण अरु करते व्यापार।
इन्हें पाप-पोषक उपदेश न देना है अनर्थ का त्याग।।142।।

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड त्याग व्रत का स्वरूप

भूमि खोदना, तरु उखाड़ना बहुत घास पर पग रखना।
जल-सिंचन फल-पत्र तोड़ना, बिना प्रयोजन नहिं करना।।143।।

हिंसाप्रदान अनर्थदण्ड त्याग व्रत का स्वरूप

विष अग्नि तलवार छुरी हल धनुष बाण इत्यादि पदार्थ।
हिंसा के उपकरण दूसरों को देने का करना त्याग।।144।।

दुःश्रुति अनर्थदण्ड त्याग व्रत का स्वरूप

राग-द्वेष बढ़ाती जो अज्ञानमयी खोटी वार्ता।
कभी नहीं सुनना न सीखना और न याद कभी करना।।145।।

जुआ खेलने के त्याग की प्रेरणा

सब अनर्थ में मुख्य और संतोष विघातक जुआ कहो।
माया चोरी अरु असत्य का घर है, इसका त्याग करो।।146।।

अन्य विविध अनर्थदण्ड त्याग की प्रेरणा

इस प्रकार जो सभी अनर्थदण्डों को त्याग करे परित्याग।
उसे प्राप्त होता है निर्मल नित्य अहिंसा विजय सुलाभ।।147।।

।। चार शिक्षाव्रतों का वर्णन ।।

सामायिक शिक्षाव्रत का वर्णन

सब द्रव्यों में राग-द्वेष तज समता भाव करो स्वीकार।
आत्मप्राप्ति का मूल यही, सामायिक करना बारंबार।।148।।

दिवस-रात्रि के अन्त समय में अविचल होकर करो अवश्य।
अन्त समय में यदि करो तो दोष नहीं गुण का ही लाभ।।149।।

यद्यपि चारित-मोह उदय है किन्तु सभी पापों का त्याग।
सामायिकयुत श्रावक को है अतः महाव्रत उसे कहा।।150।।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का वर्णन

प्रतिदिन स्वीकृत सामायिक संस्कारों में स्थिरता हो।
अतः पक्ष के अर्धभाग में तुम उपवास अवश्य करो।।151।।

होकर सब आरम्भ रहित देहादि में ममता तजकर।
पूर्व दिवस मध्याह्न पर्व के करो ग्रहण उपवास प्रवर।।152।।

फिर निर्जन-निवास में जाकर तज सावद्य योग सम्पूर्ण।
हो विरक्त इंद्रियों विषयों से मन वच तन से की गुप्ति सहित।।153।।

सुबह-शाम सामायिकादि कर दिन में धर्म-ध्यान धारे।
स्वाध्याय से निद्रा जीते शुचि शय्या पर शयन करे।।154।।

फिर प्रातः उठकर सामायिक आदि क्रिया तात्कालिक कर।
प्रासुक द्रव्यों से आगम अनुसार श्री जिन-पूजन कर।।155।।

इस प्रकार पूर्वोक्त विधि से दिन अरु रात्रि व्यतीत करे।
पुनः तीसरे दिन का आधा भाग यत्नपूर्वक वर्ते।।156।।

इस प्रकार जो सकल पाप तज सोलह प्रहर व्यतीत करे।
उसे उस समय निश्चित ही परिपूर्ण अहिंसा व्रत होवे।।157।।

उपवास में पाँचों व्रतों की पुष्टि

भोग और उपभोग हेतु से जीवों की हिंसा होती।
किन्तु भोग-उपभोग त्याग से लेश नहीं हिंसा होती।।158।।

वचन-गुप्ति से नहीं असत्य पर-वस्तु त्याग से नहिं चोरी।
मैथुन त्यागी को अब्रह्म नहिं तन ममत्व बिन संग नहीं।।159।।

इस प्रकार वह पूर्ण अहिंसक महाव्रती उपचरित कहा।
चरितमोह का उदय अतः संयम स्थान न प्राप्त किया।।160।।

भोगोपभोग शिक्षाव्रत का वर्णन

भोगोपभोग से देशव्रती को हिंसा है, अन्यथा नहीं।
वस्तु स्वरूप विचार स्व-शक्ति प्रमाण त्याज्य है दोनों ही।।161।।

एक जीव का घातेच्छुक भी जीव अनन्त विघात करे।
अतः समस्त अनंतकाय के भक्षण का परित्याग करे।।162।।

मक्खन त्याग की विशेष प्रेरणा

बहुत जीव उत्पत्ति-स्थल मक्खन भी है तजने योग्य।
जो कुछ भी आहार शुद्धि में हो विरुद्ध वह तजने योग्य।।163।।

अन्य विविध भोगोपभोग त्याग की प्रेरणा

निज शक्ति अनुसार उचित भी भोग त्यागते हैं धीमान्।
तज न सकें तो दिवस-रात्रि की मर्यादा करते धीमान्।।164।।

पहले की हुई मर्यादा में तात्कालिक अन्तर सीमा।
अपनी शक्ति विचार प्रतिदिन थोड़ी मर्यादा करना।।165।।

इस प्रकार सीमित भोगों में तुष्ट रहे बहु भोग तजे।
उसे बहुत हिंसा नहिं होती अतः विशेष अहिंसा है।।166।।

अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत का वर्णन

मुनीश्वरों को आहार-दान की प्रेरणा

दाता के गुण सहित श्रावकों द्वारा स्व-पर अनुग्रह हेतु।
अतिथि दिगम्बर मुनि को द्रव्य-विशेष विधि से देने योग्य।।167।।

नवधा भक्ति के नाम

पड़गाहन उच्चासन चरणों का प्रक्षाल तथा पूजन।
नमस्कार, मन-वच-तन अरु आहार-शुद्धि तथा भक्ति।।168।।

दातार के सात गुणों के नाम

फल निरपेक्ष क्षमा एवं निश्छलता ईर्ष्या खेद रहित।
हर्षित होना निरभिमानता दाता हो गुणस्थान सहित।।169।।

दान-योग्य पदार्थों की विशेषताएँ

राग-द्वेष मद दुक्ख असंयम भय आदिक न करे उत्पन्न।
स्वाध्याय अरु तप-वर्धक हो देने योग्य वही है अन्य।।170।।

पात्रों के भेद

रत्नत्रय-गुणधारी तीन प्रकार कहे हैं दान-सुपात्र।
अविरत सम्यग्दृष्टि देशव्रती अरु महाव्रती मुनिराज।।171।।

दान देने से हिंसा का त्याग

दान अतिथि को देने से कम हो जाती है लोभ कषाय।
हिंसा की पर्याय लोभ है अतः दान में हिंसा त्याग।।172।।

भ्रमर-वृत्तियुत पर-पीड़ा नहिं करें जो घर आए गुणवान।
मुनि को भी भोजन न कराए क्यों न उसे अति-लोभ बखान।।173।।

अपने लिए बनाया भोजन भाव सहित मुनि को देवे।
अरति विषाद रहित भावों से क्षीण लोभ पहला व्रत है।।174।।

।। सल्लेखना धर्म का वर्णन ।।

सल्लेखना धारण करने की प्रेरणा

मेरे धर्म रूप धन को यह मरण समय में सल्लेखना।
पर-भव में ले जा सकती है अतः भक्तिपूर्वक भाना।।175।।

निश्चित ही मैं मरण समय विधि-पूर्वक सल्लेखना करूँ।
इस प्रकार मैं करूँ भावना अतः अभी यह शील धरूँ।।176।।

सल्लेखना में आत्मघात का अभाव

मरना तो निश्चित है अतः कषायों को भी क्षीण करूँ।
यह मृत्यु रागादिक रहित है अतः ना आतमघात कहूँ।।177।।

आत्मघाती के लक्षण

पीड़ित हुआ कषायों से जो जल अग्नि शस्त्रादिक से-
अपने प्राण नष्ट करता है वही निजातम घात करे।।178।।

सल्लेखना में अहिंसा का सद्भाव

हिंसा-कारणभूत कषायें यहाँ क्षीण होती हो जाती हैं।
अतः अहिंसा की प्रसिद्धि सल्लेखना में आचार्य कहें।।179।।

शीलव्रतों का उपसंहार

पाँच अणुव्रत-रक्षण हेतु इस प्रकार जो शील धरें।
अतिशय उत्कण्ठित कन्यावत् उसे मुक्ति-श्री पाई।।180।।

सम्यक्त्व एवं व्रतों के पाँच-पाँच अतिचारों का वर्णन

निरतिचार व्रत-पालन की प्रेरणा

सम्यग्दर्शन अणुव्रत शीलव्रतों में पाँच-पाँच अतिचार।
प्रकट शुद्धि में दोष लगाते अतः हेय सत्तर अतिचार।।181।।

सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचारों के नाम

शंका कांक्षा ग्लनि तथा मिथ्यादृष्टि का स्तुतिगान।
अथवा मन में करें प्रशंसा, ये हैं समकित के अतिचार।।182।।

अहिंसाणुव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

छेदन-ताड़न बन्धन अथवा पशु पर लादे अतिशय भार।
भोजन-पानी उन्हें न देना यही अहिंसाव्रत-अतिचार।।183।।

सत्याणुव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

करे मृषा उपदेश, लेख झूठा लिखना अरु गुप्त कथन।
करे धरोहर-हरण और तन-चेष्टा लखकर भेद कथन।।184।।

अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

प्रतिरूपक व्यवहार चोर-सहयोग चुराई वस्तु रखे।
राज-विरोध करे, हीनाधिक माप रखे, अतिचार कहे।।185।।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

अति-कामुकता अनंग-क्रीड़ा अन्य-जनों का करें विवाह।
अविवाहित अरु पर-नारी से हो सम्पर्क - कहें अतिचार।।186।।

परिग्रहपरिमाण-अणुव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

घर भूमि अरु सोना चाँदी धन-धान्यादिक दासी-दास।
ऊनी सूती वस्त्रों का परिमाण बढ़ाना है अतिचार।।187।।

दिग्व्रत के पाँच अतिचारों के नाम

मर्यादित की गई दिशा ऊपर नीचे या तिर्यक् का।
उल्लंघन या विस्मृति कर परिमाण बढ़ाना है अतिचार।।188।।

देशव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

शब्द सुनाना रूप दिखाना वस्तु मँगाना अरु प्रेषण।
सीमा बाहर पुद्गल क्षेपण, यह जानो अतिचार कथन।।189।।

अनर्थदण्ड त्याग व्रत के पाँच अतिचारों के नाम

अश्लील वचन अश्लील चेष्टा, भोग्य वस्तु का अति संग्रह।
अविचारित वाणी अरु कार्य-कलाप ब्रह्मचर्य के अतिचार।।190।।

सामायिक शिक्षाव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

मन-वच-तन की खोटी वृत्ति और पाठ विस्मृत करना।
सामायिक में अनुत्साह ये हैं सामायिक के अतिचार।।191।।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

बिन देखे शोधे वस्तु का ग्रहण शयन मल-मूत्र निकास।
विस्मृत तथा अनादर ये प्रोषधोपवास के हैं अतिचार।।192।।

भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

वस्तु सचित्त या मिश्रित अथवा हो सचित्त वस्तु के साथ।
कच्ची हो या जली हुई कामोत्तेजक लेना अतिचार।।193।।

अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत के पाँच अतिचारों के नाम

अतिथि-दान को कहे अन्य से, वस्तु सचित्त पर रखे-ढके।
दान-समय पर अनुपस्थित हो अन्यों से मात्सर्य करें।।194।।

सल्लेखना व्रत के पाँच अतिचारों के नाम

मरण समय जीने-मरने की वांछा, मित्रों से अनुराग।
याद करे भोगों को और करे निदान ये हैं अतिचार।।195।।

अतिचारों के त्याग का फल

अतिचारों अरु अन्य दोष का कर विचार परित्याग करे।
निर्मल समकित शीलव्रतों से शीघ्र सिद्धि पुरुषार्थ लहे।।196।।

।। सकल चारित्र व्याख्यान ।।

तप धारण करने की प्रेरणा

तप भी चारित में गर्भित है अतः मोक्ष का अंग कहा।
अपनी शक्ति छिपाए बिना तप को भी सेवन योग्य कहा।।197।।

बहिरंग तप के छह भेदों के नाम

अनशन अवमौदर्य विविक्त शय्यासन एवं रस परित्याग।
कायक्लेश वृत्ति-परिसंख्या यही बाह्य-तप जानो गाह्य।।198।।

अंतरंग तप के छह भेदों के नाम

प्रायश्चित विनय वैयावृत एवं तन-ममत्व का त्याग।
स्वाध्याय अरु ध्यान यही है अंतरंग-तप जानो गाह्य।।199।।

मुनिव्रत धारण करने की प्रेरणा

जिन-प्रवचन में मुनीश्वरों का कहा गया जैसा आचार।
अपना पद अरु शक्ति विचार गृहस्थ करे इसको स्वीकार।।200।।

मुनीश्वरों के छह आवश्यकों का वर्णन

समता स्तुति और वन्दना प्रतिक्रमण अरु प्रत्याख्यान।
तन-ममत्व परित्याग यही व्युत्सर्ग इन्हें आवश्यक जान।।201।।

तीन गुप्तियों के नाम

भाँति-भाँति काया को वश में करे और वाणी को भी।
मन का भी सम्यक् निरोध करना ये ही हैं तीनों गुप्ति।।202।।

पाँच समितियों के नाम

सावनधान हो आना-जाना हित मित प्रिय वच योग्याहार।
सावधान हो वस्तु उठाना-धरना मल-मूत्रादिक त्याग।।203।।

दश धर्मों के नाम

क्षमा मार्दव आर्जव शुचिता सत्य और संयम तप त्याग।
आकिंचन रु ब्रह्म में चर्या ये दश धर्म गहो बड़-भाग।।204।।

बारह भावनाओं के नाम

अध्रुव अशरण जन्म-मरण, एकत्व-विभक्त अशुचि आस्रव।
संवर निर्जरा लोक बोधिदुर्लभ अरु धर्म भावना कर।।205।।

बाईस परीषहों के नाम

भूख प्यास शीतोष्ण नग्नता याचकपन अरु अरति अलाभ।
दंशमशक आक्रोश व्याधि दुख शारीरिक मल में समभाव।।206।।

तृण-स्पर्श अज्ञान अदर्शन प्रज्ञा पुरस्कार सत्कार।
शयन गमन वध आसन एवं नारी परिषह हो स्वीकार।।207।।

संक्लेश-विरहित मन से भव-क्लेशों से हैं भयभीत।
इन बाईस परिषह को हे साधु! साम्य भाव से जीत।।208।।

निरन्तर रत्नत्रय का सेवन करने की प्रेरणा

इस प्रकार यह रत्नत्रय है अविनाशी पद-वांछक को।
गृही जनों को एकदेश भी अहो निरन्तर सेवन योग्य।।209।।

मुनिव्रत धारण करने की विशेष प्रेरणा

उद्यमवंत गृहस्थ समय पर बोधि-लाभ को प्राप्त करें।
मुनि-पद का अवलम्बन करके रत्नत्रय को पूर्ण करें।।210।।

रत्नत्रय मुक्ति का ही कारण है

विकल-रत्नत्रयधारी को जो शुभ कर्मों का होता बन्ध।
वह विपक्षकृत रत्नत्रय नहिं बन्ध करे वह तो शिवपन्थ।।211।।

रत्नत्रय के साथ रहने वाले रागांश से बन्धन

आत्मा का जो अंश सुदृष्टि-स्वरूप, नहीं बन्धन उससे।
रागरूप जो अंश रहा है बन्धन होता है उससे।।212।।

आत्मा का जो अंश सुबोध-स्वरूप, नहीं बन्धन उससे।
रागरूप जो अंश रहा है बन्धन होता है उससे।।213।।

आत्मा जो अंश चरित्र-स्वरूप, नहीं बन्धन उससे।
रागरूप जो अंश कहा है बन्धन होता उससे।।214।।

बन्ध प्रक्रिया का वर्णन

हो प्रदेश-बन्धन योगों से स्थिति-बन्ध कषायों से।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र नहीं हैं योग कषाय स्वरूप।।215।।

रत्नत्रय से बन्ध के अभाव की सिद्धि

आत्म-विनिश्चय सम्यग्दर्शन आत्मज्ञान है सम्यग्ज्ञान।
आत्म-लीनता ही चरित्र तो इनसे क्यों हो बन्ध सुजान।।216।।

रत्नत्रय तीर्थंकर आदि प्रकृतियों के बन्ध का कारण भी नहीं है

तीर्थंकर-आहारक प्रकृति बँधती समकित-चारित से।
आगम में जो कहा गया वह नय-विज्ञों को दोष नहीं।।217।।

समकित-चारित होने पर भी बन्धन योग-कषायों से।
इनके बिना न उनका बन्धन ये तो उदासीन रहते।।218।।

सम्यक्त्व को देवायु के बन्ध का कारण क्यों कहा

सर्व लोक में जो प्रसिद्ध देवादिक प्रकृती का बन्ध।
रत्नत्रयधारी मुनिवर को कैसे होय कहो यह बन्ध?।।219।।

देवायु का बन्ध शुभोपयोग के अपराध का फल है

रत्नत्रय तो मुक्ति का ही कारण है, नहिं बन्धन का।
है अपराध शुभोपयोग का उससे पुण्यास्रव होता।।220।।

एक वस्तु में दो अत्यन्त विरुद्ध कार्य के मिलने से।
होता है आरोप रूढ़ि से जैसे घी से जल जाते।।221।।

निश्चय अरु व्यवहाररूप यह पूर्व कथित मुक्ति का मार्ग।
समकित बोध-चरित लक्षण है प्राप्त कराता पद परमात्म।।222।।

सिद्ध भगवान का स्वरूप

नित्य निरंजन निज स्वरूप में लीन और उपघात-विहीन।
विशद् गगनवत् परमपुरुष होता है लोक-शिखर शोभित।।223।।

सकल ज्ञेय-ज्ञायक कृतकृत्य परमपद परमानन्द सुलीन।
ज्ञान ज्योतिमय परमात्मा हैं सदा निजानन्द रस में लीन।।224।।

जैन शासन की स्याद्वाद नीति

ज्यों गोपी रस्सी से दधि मथती है वैसी जैनी नीति।
एक धर्म को मुख्य करे अरु गौण अन्य को करे सुनीति।।225।।

ग्रन्थ का समापन एवं ग्रन्थ-कर्ता आचार्य का अकर्तृत्व

विविध वर्ण से रचे गए पद, पद से बन जाते हैं वाक्य।
वाक्यों से यह शास्त्र बना है किंचित् नहिं है मेरा कार्य।।226।।

*****

उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

अनुवादक का मंगलाचरण

(दोहा)

पंच परम गुरु नमन करि, वंदूँ श्री जिनवानि।
जा प्रसाद सब अघ टरै, उपजत सम्यग्ज्ञान।।

ग्रन्थकार का मंगलाचरण

धर्मी के अन्तर में देव-गुरु-धर्म का वास है

(वीरछन्द)

शुद्ध धर्म-जिनदेव-गुरु अरु परमेष्ठी वाचक नवकार।
सदा बसे कृतकृत्य पुरुष के उर में त्रिभुवन मंगलकार।।1।।

जिनेन्द्र भक्ति का माहात्म्य

पढ़ने गुनने तपश्चरण या दानादिक में नहीं समर्थ।
तो अरहन्त प्रभु के चरणों में ही तू दृढ़ श्रद्धा रख।।2।।

जिनधर्म का माहात्म्य

जैन धर्म ही एक शरण है भव-दुख को हरनेवाला।
अतः मूढ़मति! तू सुख हेतू अन्य शरण से ठगा गया।।3।।

कुदेव पूजना मिथ्यात्व है

देव और दानव रक्षा करते हैं - ऐसा नहीं सुना।
अरहन्तादिक का श्रद्धानी ही अजरामर पद पाता।।4।।

मिथ्यात्व का फल

जैसे वेश्या नर को ठगती फिर भी वह हर्षित होता।
मिथ्यावेशी ठगे धर्म-निधि किन्तु न भान इसे होता।।5।।

परीक्षा करके ही धर्म ग्रहण करना चाहिए

लोक-प्रवाह तथा कुल-परिपाटी से यदि धरम होता।
तो म्लेच्छों की परिपाटी भी धर्म, अधर्म न कुछ होता।।6।।

कुलक्रम से न्याय नहीं होता

कुलक्रम से हो न्याय नहीं, जन-राजनीति भी यही कहे।
तो त्रिभुवनपति के शासन में कुलक्रम से क्यों धर्म चले।।7।।

वैराग्य की दुर्लभता

जिन-वचनों के ज्ञाता जीवों को भव से वैराग्य न हो।
कहो कुगुरुओं के निमित्त से उदासीन वे कैसे हों।।8।।

ज्ञानी की करुणा

देख असंयम-ग्रस्त जनों को पुरुष संयमी खेद करे।
हाय! हाय!! संसार कूप में डूबे फिर भी नाच रहे।।9।।

मिथ्यात्व ही सब पापों का बड़ा पाप है

आरंभ से उत्पन्न पाप से जीव तीव्र दुःख पाते हैं।
किन्तु लेश मिथ्यात्व रहे तो जीव बोधि नहीं पाते हैं।।10।।

उत्सूत्र को जिनधर्म की प्राप्ति दुर्लभ है

जिन-आज्ञा का उल्लंघन उत्सूत्र लेश उन्मार्ग कहे।
भंग करे जिन-आज्ञा, उसको जैन धर्म फिर दुर्लभ है।।11।।

द्रव्यलिंग से मुक्ति नहीं होती

जिन-आज्ञा से रहित कोइ नर द्रव्यलिंग धारण करता।
मूढ़ मोह से अज्ञानी वह भव-सागर में है डूबा।।12।।

कदाग्रही उपदेश का पात्र नहीं

यथा मांस-भक्षी कुत्ते के मुख में कोई कपूर रखे।
तथा दुराग्रह-ग्रस्त मनुज को मूढ़ धर्म-उपदेश करे।।13।।

ज्ञानी का क्रोध भी क्षमा है

जिनसूत्रों का वक्ता यद्यपि क्रोधित किन्तु क्षमा-भंडार।
क्षमाशील जिनसूत्र विरोधी वक्ता महा मोह-आगार।।14।।

जिनधर्म ही सच्चा हितैषी है

जैन-धर्म से ही शिवसुख है इसमें कुछ सन्देह नहीं।
अतः जानने योग्य-धर्म है रसिकों को दुख सह कर भी।।15।।

जिनधर्म का ज्ञान होना दुर्लभ है

लौकिक बातें सभी जानते रत्न मिले चौपथ पर भी।
जिन-भाषित इस धर्म-रत्न का ज्ञान मात्र है दुर्लभ ही।।16।।

सच्चे वक्ता की प्राप्ति दुर्लभ है

यदि राजा पापी होवे तो न्यायवान रह सके नहीं।
तीव्र मोह में निर्मल सम्यक्-वार्ता भी हो सके नहीं।।17।।

उत्सूत्रभाषी वक्ता त्याज्य है

श्रेष्ठ मणि से युक्त सर्प भी जैसे त्याज्य कहा जग में!
बहु गुणयुत उत्सूत्र प्रवक्ता भी वैसे ही त्याज्य अरे!।।18।।

मोह की महिमा

स्वार्थ लोभ से संसारी-जन पुत्रादिक से स्नेह करें।
हाय! मोह की महिमा देखो जैनधर्म नहिं स्वीकारें।।19।।

सुख का स्थान धर्म है

गृह-व्यापार-परिश्रम से नर थका उसे मिलता आराम-
रमणी में ही, किन्तु ज्ञानियों को इक उत्तम धर्म शरण।।20।।

ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर

अज्ञानी-ज्ञानी दोनों ही उदर पूर्ति में एक समान।
किन्तु एक दुख-नरक भोगता, दूजा पाता है शिवधाम।।21।।

ज्ञानी से देशना प्राप्त करना योग्य है

सब जीवों को धर्म-रुचि उत्पन्न कराता जिन-उपदेश।
शुद्ध देशना से समकित हो, समकित पूर्वक हो संवेग।।22।।

श्रद्धानी वक्ता से ही शास्त्र सुनना चाहिए

जिन-आज्ञा से कुशल सुगुरु के पास धर्म-उपदेश सुनो।
अथवा गुरु-उपदेश प्रवक्ता श्रद्धानी से धर्म सुनो।।23।।

सत्य उपदेश की पहचान

कथा वही, उपदेश वही है, ज्ञान वही जिससे यह जीव-
जाने लोकाचार-धर्म, सम्यक् मिथ्या, गुरु-अगुरु स्वरूप।।24।।

भवितव्यता अलंघ्य है

जिन-गुणरत्न महानिधि पाकर भी क्यों नहिं मिथ्यात्व तजे?
क्या अचरज यदि निधि पाकर भी कृपण पुरुष धनहीन रहे।।25।।

धार्मिक पर्वों की प्रशंसा

जिनने वार्षिक चातुर्मासिक पर्वों को प्रारम्भ किया।
धन्य पुरुष वे, इससे पापी जीवों ने भी धर्म किया।।26।।

हिंसक पर्वों की निन्दा

जिनने मिथ्या पर्व चलाये उनका नाम कथन भी पाप।
क्योंकि उनकी संगति से धर्मी की मति में होता पाप।।27।।

सामान्य जनों पर संगति का प्रभाव पड़ता है

मध्यम बुद्धिमान जीवों को संगति से होते गुण-दोष।
उत्तम बुद्धिमान जीवों को संगति से नहिं गुण या दोष।।28।।

अतिशय पापी जीव धर्म के पर्वों में भी करते पाप।
शुद्ध धर्ममय जीव, पाप के अवसर में भी करें न पाप।।29।।

धन को निमित्तवश गुण-दोष का कारण बतलाते हैं

लक्ष्मी दो प्रकार की होती एक गुणों का करे अभाव।
एक उल्लसित करती नर के समकित आदि पवित्र स्वभाव।।30।।

कुपात्रदान निष्फल है

गुरु हो गये भाट आज-कल दाता का करते गुणगान।
दोनों ही अजान जिनमत से डूब रहे अथाह संसार।।31।।

यथार्थ वक्त की दुर्लभता

बहुजन रत मिथ्या-प्रवाह में परम अर्थ-ज्ञाता थोड़े।
गुरुजन हैं गौरव के रसिया अतः शुद्ध पथ को गोपें।।32।।

अयोग्य वक्ताओं की बहुलता

सभी जीव अरहन्त देव, निर्ग्रन्थों का बस लेते नाम।
भाग्यहीन नर पा न सकें उनका सुखमय स्वरूप शिवधाम।।33।।

ज्ञानी वक्ता पापियों को सिरदर्द है

शुद्ध जिनागम-रत ज्ञानी को पापी जन मानें सिर-शूल।
मूढ़ों को वे ज्ञानी गुरु नहिं भासित हों, लगते सिर-शूल।।34।।

केवली की अनुपस्थिति पर आचार्य को खेद है

हाय अनर्थ? कि स्वामी कोइ नहीं है जिससे करें पुकार।
क्या जिनवाणी? कैसे गुरु हों? कैसा हो श्रावक आचार?।।35।।

कुगुरु सर्प से भी अधिक कष्टदायी

सर्प देखकर लोग भागते उन्हें न कोइ कहे कुछ भी।
कुगुरु-सर्प से जो बचता है दुष्ट उसे कहते हैं मूढ़।।36।।

कुगुरु में सर्प से भी अधिक दोष

सर्प-दंश से एक मरण हो कुगुरु करायें मरण अनन्त।
सर्प-संग है भला कुगुरु से, कुगुरु-संग नहिं श्रेष्ठ वदन्त।।37।।

अज्ञान की महिमा

जिन-आज्ञा से वंचित जन को गुरु कहकर जो नमते हैं।
वे बेचारे क्या कर सकते भेड़-चाल से लुटते हैं।।38।।

मोह की महिमा

रोटी का टुकड़ा माँगे तो खेद-खिन्न होता जग में।
हाय! मोह की महिमा देखो कुगुरु परिग्रह को चाहे।।39।।

कुगुरु पर ज्ञानी की करुणा

ढीठ दुष्ट निर्लज्जों को क्या कहें और क्या कर सकते?
मूढ़-जनों को बाह्य-लिंग दिखला कर नरकों में खींचें।।40।।

मिथ्यात्व के उदय की पहचान

तीव्र-मोह से कुगुरु-जनों में मूढ़ों को होता अनुराग।
किन्तु भव्यजन के उर में हो सद्गुरुओं के प्रति अनुराग।।41।।

सम्यक्त्व के उदय की पहचान

जैसे-जैसे धर्म क्षीण हो, दुष्ट-जनों का उदय बढ़े।
वैसे वैसे ही सम्यक्त्वी का सम्यक्त्व उल्लसित हो।।42।।

पाप के उदय की पहचान

जननी-सम जीवों का रक्षक जैन-धर्म यदि नहीं बढ़े।
तो जानो निकृष्ट काल में जीवों का पापोदय है।।43।।

मिथ्यादृष्टि की पहचान

करे धर्म में कपट तथा उत्सूत्र कथन में निर्भय है।
कहे कुगुरु को सुगुरु मूढ़ पापोदय को भी पुण्य कहे।।44।।

प्रत्येक धर्म कार्य भी मर्यादित होना चाहिए

जिन-आज्ञा अनुसार योग्य हैं पूजादिक सब धार्मिक कार्य।
जिन-आज्ञा विपरीत दुखद हैं यत्नाचार रहित सब कार्य।।45।।

मिथ्यात्व ही संसार का कारण है

कोई कष्ट सहे धर्मार्थी इन्द्रिय-दम अरु त्याग करे।
किन्तु वमे नहिं मिथ्या विष-कण अतः भवोदधि में डूबे।।46।।

जैसी संगति वैसा फल

धर्मी की संगति से बढ़ती धर्म-रुचि निर्मल आचार।
अज्ञानी की संगति से नित प्रति घटती है रुचि अरु ज्ञान।।47।।

धर्मात्माओं की संगति ही करने योग्य है

शुद्ध गुरु का सेवक है जो महाशत्रु अज्ञानी का।
इसीलिए हो बल-विहीन नहिं संग करे अज्ञानी का।।48।।

धर्म और धर्मात्माओं की अवनति का कारण

यदि बलहीन शास्त्र का ज्ञाता अरु अज्ञानी हो बलवान।
वहाँ धर्म-वृद्धि नहिं होती ज्ञानी का भी घटता मान।।49।।

धर्मात्माओं को पीड़ा के कारण - भ्रष्ट धनिक

यदि कुमार्ग-सेवी समर्थ हो किन्तु न करे धर्म अनुराग।
तो उसका धन निष्फल जाता धर्मी को पीड़ित करता।।50।।

धर्मात्माओं के अनादर का कारण - मिथ्यावादी

जो श्रावक समूह में करते हैं मिथ्या-एकान्त कथन।
वे धर्मी जन के प्रभाव को नष्ट हेतु करते उद्यम।।51।।

धर्मात्माओं के सहायक प्रशंसा योग्य हैं

वे नर-रत्न गुणों के धारक स्वर्णगिरी-सम महिमावान।
जिनके आश्रय से शासन की सेवा हो वे पुरुष महान।।52।।

ज्ञान-वृद्धि में सहायक ही महान हैं

कल्पवृक्ष चिन्तामणि से भी उसका मूल्य न हो सकता।
जो धर्माराधक जीवों को सदा सहारा है देता।।53।।

साधर्मियों की सहायता मोह गलाने का कारण है

सत्पुरुषों का नाम मात्र लेने से लज्जित होता मोह।
उनके गुण-कीर्तन करने से कर्म नष्ट हो जाए अहो।।54।।

कषायों और कीर्ति इच्छुक के धर्म का अभाव है

आज्ञा-रहित कषाय-सहित हो आत्म-प्रशंसा चाह धरे।
करें धर्म-सेवन पर उनको धर्म तथा यश नहीं मिले।।55।।

उत्सूत्रभाषी को धिक्कार है

इतर-प्रशंसा वांछा से उत्सूत्र कथन से नहीं डरें।
हा हा! उन पुरुषों के परभव का दुख बस केवलि जानें।।56।।

उत्सूत्रभाषी को सम्यग्दर्शन का अभाव है

सूत्र-विरुद्ध प्रवक्ता को हो बोधि नष्ट, संसार अनन्त।
प्राण जायें पर धीर पुरुष नहिं कभी करें उत्सूत्र कथन।।57।।

मिथ्यादृष्टि प्रशंसा के योग्य नहीं है

मूर्खों को खुश करने हेतु करें नहीं उनका गुणगान।
क्या कुलवधू कभी करती हैं नगर-नारियों का गुणगान।।58।।

जिणा को सदाकाल जिनाज्ञा भंग करने का भय रहता है

जो भव से भयभीत रहें वे जिन-आज्ञा भंग से डरते।
जिन्हें न भव-भय वे क्रीड़ा में आज्ञा उल्लंघन करते।।59।।

कर्मोदय की प्रबलता

जब ज्ञानी की बुद्धि भ्रष्ट हो तो अज्ञानी का क्या दोष।
धिक्-धिक् कर्मोदय को जिससे प्रभु मिलकर भी नहीं मिले।।60।।

धर्मात्माओं का उपहास करना उचित नहीं है

उच्च कुलीन पुरुष या अन्य किसी का मत उपहास करो।
कहो कौन-सी रीति तुम्हारी धर्मी का उपहास करो।।61।।

सज्जन पुरुषों का स्वभाव

जिन-वचनों से द्वेष और मिथ्या पापों में हर्ष करे।
शुद्ध हृदय ज्ञानी उसको भी हित की बात सुनाते हैं।।62।।

सज्जपना सम्यग्दृष्टि स्वभाव

अथवा सरल स्वभावी सज्जन सब में समता रखते हैं।
जहर उगलते विषधर पर भी ज्ञानी करुणा करते हैं।।63।।

सम्यग्दर्शन की दुर्लभता

गृह-व्यापार रहित मुनियों को भी यदि समकित नहिं होवे।
गृह-व्यापार निमग्न जनों की श्रद्धा की क्या बात करें।।64।।

उत्सूत्रभाषी तपस्वी भी संसारी है

निज या पर के हित विरुद्ध विपरीत कथन जो है करता।
भव-समुद्र में निश्चित डूबे जप-तप घटाटोप विरथा।।65।।

जिनवचन सम्यग्चारित्र का कारण है

जैसे-जैसे सम्यक् परिणमती जिनवाणी ज्ञानी को।
वैसे-वैसे धर्म-वृद्धि हो दुश्चरित्र परिहार करें।।66।।

जिनभक्ति ही यथार्थ वैराग्य का कारण है

जिनके उर में शुद्ध ज्ञानमय श्री जिनराज निवास करें।
उनको मिथ्या धर्म सभी तृण-तुल्य तुच्छ भासित होते।।67।।

लोकमूढ़ता का प्रभाव

लोक-मूढ़ता के प्रवाह की बहती हो जब पवन प्रचण्ड।
दृढ़ सम्यक्त्व महाबलविरहित विचलित हो जाते बहुजन।।68।।

नरक के दुख स्मरण मात्र से ज्ञानी काँपता है

जिन-आज्ञा उल्लघंन कर्ता अज्ञानी जो दुख भोगें।
उन्हें याद करके ज्ञानी-पुरुषों का उर थर-थर काँपे।।69।।

दूसरे के दोष ढूंढ़ना अपराध है

अरे जीव! अज्ञानी मिथ्यादृष्टि के क्यों देखे दोष?
अपने को क्यों नहीं देखता समकित नहीं हुआ निर्दोष।।70।।

प्रथम मिथ्यात्व त्यागने योग्य है

सेवन कर मिथ्यात्व भाव को जो चाहें निर्मल जिनधर्म।
ज्वराक्रान्त होकर भी वे नर खाना चाहें मिष्ट अशन।।71।।

धर्म का संबंध उच्चकुल से नहीं है

जैसे उत्तम कुल की नारी शील मलिन कर ले कुल नाम।
त्यों मिथ्या आचरण करें अरु बतलाते हैं गुरु का नाम।।72।।

मिथ्याचारित्र में श्रावकपने का अभाव है

जो उत्सूत्र आचरण कर निज को उत्तम श्रावक कहते।
स्वयं दरिद्री होकर भी धनवान स्वयं को वे कहते।।73।।

परीक्षा करके धर्मधारण करना योग्य है

कोइ लीन हैं कुल-क्रम में अरु कोई शुद्ध जैन-मत में।
दोनों में अन्तर पहचानो किन्तु मूढ़ नहिं भेद गिनें।।74।।

मिथ्यादृष्टि की संगति अहितकारी

अज्ञानी की संगति तजकर भी मिथ्या आचरण करें।
चोरों की संगति तजकर वे चोरी को ही अपनाएँ।।75।।

हिंसा महा अधर्म

पर्व पाप-नवमी को लाखों पशुओं की बलि दी जाती।
वही पर्व जो श्रावक पूजें करवाते निन्दा जिन की।।76।।

गृह स्वामी का मिथ्यात्व सम्पूर्ण कुल हो हानिकर

जो गृह-स्वामी करे प्रशंसा एवं रुचि मिथ्या-मत की।
निज कुटुम्ब को भव-समुद्र में डुबा रहा वह निश्चित ही।।77।।

मिथ्यात्व और कषायपोषक आचरण मिथ्यात्व है

कुंड-चतुर्थी नवमी बारस पिण्डदान आदिक जानो।
पर्व मनाने वाले हैं अज्ञानी उन्हें न समकित हो।।78।।

कुटुम्ब का मिथ्यात्व दूर करने वाले विरले

ज्यों कीचड़ में फँसी हुई गाड़ी खींचे बलवान वृषभ।
मिथ्यातम से ग्रस्त कुटुम्बी को निकालते विरले जन।।79।।

तीव्र मिथ्यात्वी को जिनदेव का स्वरूप समझ में नहीं आता

ज्यों बादल में छिपा सूर्य नहिं दिखता भूतल से जन को।
त्यों मिथ्यात्व उदय में श्रीजिन प्रकट न दिखते हैं जन को।।80।।

सम्यक्त्व से द्वेष करनेवाली का जन्म निष्फल है

अरे! जन्म क्यों लिया व्यर्थ तूने जननी को दुख देकर।
क्योंकि हुआ मिथ्यात्व ग्रस्त तू करे गुणों से ही मत्सर।।81।।

मिथ्याभेषी दूर से ही त्याज्य

मात्र वेशधारी को वन्दन से या शिक्षा लेने से।
डूबे महा भवार्णव में इसलिए दूर से ही तज दे।।82।।

जो जीव जैनधर्म अंगीकार करते हैं वे विशेष प्रशंसनीय

शुद्ध मार्ग में जन्मे नर सुख से शिवपथ में गमन करें।
अहो! अन्य पथ में भी जन्मे धन्य सुपथ में गमन करें।।83।।

तीव्र मिथ्यात्वी के विवेक का अभाव

मिथ्यात्वी को विघ्न होय पर पापी मन कुछ नहीं कहे।
ज्ञानी को यदि विघ्न होय तो अधम धर्म का फल मानें।।84।।

सम्यक्त्वी को विघ्न भी उत्सव

ज्ञानी को यदि विघ्न होय तो भी उत्सव जैसा माने।
अज्ञानी को महा-महोत्सव भी आपत्ति समान लगे।।85।।

सम्यग्दृष्टि इन्द्र द्वारा वंदनीय

मृत्यु प्राप्त होने पर भी जो समकित का नहिं त्याग करें।
उसके चरणों में सुरपति भी अपनी निधियों सहित झुकें।।86।।

सम्यक्त्वी को जीवन से मोह नहीं होता

तृण-समान गिन जीवन त्यागें किन्तु न सम्यक् रत्न तजें।
जीवन तो फिर मिल सकता है किन्तु न सम्यक् रत्न मिले।।87।।

सम्यग्दृष्टि ही यथार्थ वैभववन्त

जो सम्यक्त्व-रत्न से भूषित वे ही सब वैभव सम्पन्न।
सम्यक्-रत्न रहित नर यद्यपि रहें धनिक पर महा विपन्न।।88।।

सम्यग्दृष्टि की पहचान

जिन-पूजन करते ज्ञानी को यदि सुर संपति भी देवे।
किन्तु उसे निस्सार जानकर वे जिन-पूजन में रमते।।89।।

जिनपूजन सम्यक्त्व का कारण

तीर्थंकर-देवों की पूजा समकित का है निमित अहो।
कुगुरु-कुदेवों की पूजा मिथ्यादर्शन का निमित कहो।।90।।

तत्त्वज्ञान पुरुष की पहचान

जिनवाणी में कथित तत्त्व को सत्य मानता अन्य नहीं।
लोक रूढ़ि परमार्थ न माने वही पुरुष सम्यग्ज्ञानी।।91।।

जिनाज्ञा से ही धर्म प्रवर्तता है

धर्म कहा है जिन-आज्ञा से जिन-आज्ञा विपरीत अधर्म।
वस्तु स्वरूप समझ कर ऐसा जिन-आज्ञा से करना धर्म।।92।।

मिथ्यादृष्टि की पहचान

मिले सुगुरु स्वाधीन किन्तु जो शुद्ध धर्म को नहीं सुनें।
दुष्टचित्त वे ढीठ पुरुष भवभ्रमण भयरहित महा सुभट।।93।।

गुणी पुरुष के चारित्र होता ही है

शुद्ध धर्म-कुल में जन्मे, जग में न रमें जिन दीक्षा लें।
परम-तत्त्व निज-शुद्धात्म को ध्याकर शिव-रमणी वरते।।94।।

संसार से उदास पुरुष ही प्रशंसनीय

नरकादिक दुख सुनकर जो हरि-हर की ऋद्धि नहिं चाहें।
उन भविजन की करूँ प्रशंसा उदासीन जड़-वैभव से।।95।।

ग्रन्थकर्ता द्वारा पूर्वाचार्य का आभार

धर्मदास आचार्य रचित उपदेश रत्नमाला सिद्धान्त।
श्रद्धापूर्वक सभी श्रमण गण पढ़ें पढ़ायें करें मनन।।96।।

शास्त्र की निन्दा करना दुर्गति का कारण

कोई अधम छली अज्ञानी शास्त्रों की निन्दा करते।
हाय! हाय! वे उसके फल में नरकादिक दुख नहिं गिनते।।97।।

कषायवश जिनाज्ञा भंग करना योग्य नहीं

चक्री या राजा की आज्ञा भंग करे तो मिले मरण।
तो त्रिभुवनपति की आज्ञा का भंग करे तो क्यों न मरण।।98।।

जिसे जिनाज्ञा प्रमाण नहीं उसे धर्म नहीं होता

जगत-गुरु, जिनराज वचन सब जीवों को हितकारी हैं।
जो विराधना करे उसे कैसे हो धर्म, दया कैसे?।।99।।

ज्ञान बिना मूढ़ जीव क्रिया आचरते हैं

आगम से विपरीत क्रिया के आडम्बर से अज्ञानी।
हो प्रसन्न पर, निन्दनीय कहते हैं उन्हें तत्त्वज्ञानी।।100।।

ज्ञानदान ही श्रेष्ठदान

शुद्ध धर्म-दाता परमात्मा जयवन्तो नहिं अन्य कुदेव।
कल्पवृक्ष जैसा हो सकता है क्या जग में तरु कोई।।101।।

अविवेकी को क्रोध होता ही है

जो गुण-दोष नहीं जानें वे कैसे हों बुध में मध्यस्थ।
विष-अमृत को एक गिनें वे कैसे रह सकते मध्यस्थ।।102।।

धर्म के मूल देव-शास्त्र-गुरु हैं

धर्ममूल जिनदेव वचन अरु सज्जनवर गुरु जो निर्ग्रन्थ।
शेष सभी स्थान पाप के निज पर हेतु करूँ वर्जन।।103।।

सच्चा गुरु जिनाज्ञानुसारी ही होता है

हमें किसी से राग-द्वेष नहिं, मात्र गुरु से है अनुराग।
धर्म-गुरु हैं तत्पर जिन-आज्ञा में शेष सभी का त्याग।।104।।

जिनवचनों से शोभायमान ही गुरु है

यह मेरे गुरु और पराये, भेद न करते श्रद्धावान।
सभी सुगुरु हैं जो जिन-वच-रत्नों से रहते शोभावान।।105।।

सज्जनों की संगति से दूसरे सज्जन हो जाते हैं

बलि-बलि जाऊँ पुण्यवान सज्जन की जो गुणवान सुधी।
अल्पकाल भी जिनकी संगति धर्मबुद्धि उलसित करती।।106।।

ज्ञानी गुरुओं का सद्भाव सदा रहता है

जिनको जिनवर परम इष्ट हैं जो जिनवल्लभ हैं मुनिराज।
शुद्ध पवित्र गुणों के धारक अहो आज भी हैं मुनिराज।।107।।

सुगुरु वचन भव्य को उल्लासित करते ही है

गुरुवचनों से भी न किसी का समकित उलसित हो पाता।
रवि-किरणों से भी उल्लू का अन्धकार नहिं नश पाता।।108।।

मिथ्यादृष्टियों की मूर्खता को धिक्कार

जग में जीवों को मरते लख कर भी जो न करें कल्याण।
पापों से नहिं हों विरक्त उन ढीठ जनों को है धिक्कार।।109।।

शोक करने से अत्यन्त अशुभ कर्म का बन्ध होता है

इष्ट-वियोग होने पर क्रन्दन करके सिर छाती कूटे।
अपने को नरकों में पटके इस कुनेह को धिक्-धिक् है।।110।।

शोक करने से वर्तमान और भविष्य दोनों नष्ट होते हैं

एक दुक्ख प्रिय के वियोग का दूजा नरकों में जाये।
ज्यों ऊपर से गिरे कोइ फिर लाठी से हो सिर में घाव।।111।।

भव्य जीव ही शुद्ध जैनधर्म में रुचि करते हैं

सुगुरु और साधर्मी श्रावक दुषम काल में दुर्लभ हैं।
रागी-द्वेषी नाम मात्र के गुरु अरु श्रावक बहुत मिलें।।112।।

धर्म धर्मात्माओं को आनंदित करते हैं

जिन-भाषित यह शुद्ध धर्म है भाग्यवान को दे आनन्द।
मोहित जो मिथ्यात्व भाव से वे कुधर्म में हैं रतिवन्त।।113।।

ज्ञानी जीवों की करुणा

आगमज्ञ अरु शुद्ध हृदय ज्ञानी को एक महादुख है।
मूढ़ पाप का सेवन करते और उसे ही धर्म कहें।।114।।

सच्चे धर्मात्माओं की विरलता

संवेग सहित जिन-वचनों में रमने वाले नर थोड़े हैं।
भव-भय सहित यथाशक्ति समकित का पालन करते हैं।।115।।

सम्यग्दर्शन के बिना व्रताचरण निरर्थक

सर्व अंग हों किन्तु धुरी के बिना न गाड़ी कभी चले।
कितना भी हो धर्माडम्बर समकित के बिन नहीं फले।।116।।

ज्ञानी मध्यस्थ ही रहते हैं

धर्म तत्त्व परमार्थ हिताहित नहीं जानते अज्ञानी।
कैसे उन पर क्रोध करें जो धर्म तत्त्व के हैं ज्ञानी।।117।।

अज्ञानी द्वारा अन्य का हित नहीं हो सकता

निज आत्मा के बैरी पर-जीवों पर कैसे करें दया।
बन्दीगृह में पड़ा चोर पर का हित कर सकता है क्या?।।118।।

धन प्राप्त करने का भाव पाप भाव है

धन अर्जन का कारण जो व्यापार तथा राज्यादि सभी।
पापरूप है, धन्य पुरुष जो उन्हें त्यागते हो भव-भीत।।119।।

मिथ्यादृष्टि ही धन कमाने में आसक्ति रखता है

धन, पुत्रादिक में मोहित अरु आत्मवीर्य से है जो हीन।
उदर पूर्ति के हेतु करें व्यापार, पाप से रहें मलीन।।120।।

उदर भरने के लिए पापारम्भ करनेवाले तो अधम हैं ही

जो जन कारण बिना मात्र अज्ञान गर्व से करते हैं।
जिनमत से विपरीत कथन उन पंडित को धिक् है धिक् है।।121।।

उत्सूत्रभाषी के संसार भ्रमण के उदाहरण

किया वीर के जीव मरीचि ने थोड़ा-सा उत्सूत्र कथन।
कोड़ा-कोड़ी सागर तक वह रहा भटकता इस भव-वन।।122।।

शास्त्रों के ऐसे कथनों को बार-बार जो सुनकर भी।
करे सदा उत्सूत्र कथन अवगणना करके दोषों की।।123।।

कैसे हो जिनधर्म उसे अरु ज्ञान-विराग कहो कैसे?
पंडितमानी अहंकार से घोर नरक में ही डूबे।।124।।

तीव्र मिथ्यादृष्टि उपदेश का पात्र नहीं

अरे! बहुत चिकने कर्मों से बँधे हुए जो अज्ञानी।
महादोष उनसे कुछ कहना, अतः कहें नहिं कुछ ज्ञानी।।125।।

तीव्र मिथ्यादृष्टि को उपदेश देना वृथा

जिनका हृदय विशुद्ध नहीं वे क्या जानें जिन-वचनों को।
उनको जो गुणिजन समझाते व्यर्थ स्वयं का दमन करें।।126।।

सम्यक्त्व ही दुःख दूर करने का उपाय

आचरने की बात दूर है साधन अरु प्रभावना दूर।
मात्र धर्म की श्रद्धा से ही नरकादिक दुख होते दूर।।127।।

सुगुरु का संग प्राप्ति की भावना

धन्य दिवस वह कब आएगा जब श्रीगुरु के चरणों में।
लेश न हो उत्सूत्र और अज्ञान सुनूँ जिन-वचनों को।।128।।

तत्त्वज्ञ को ज्ञानी गुरु ही प्रिय

किन्हीं गुरु को देख तत्त्वज्ञानी का हृदय नहीं रमता।
कोई अदृष्ट तथापि रमे जिय उनका जिन-वल्लभ जैसा।।129।।

कोई कहे कि हम जो कुगुरु को सुगुरु के समान जानकर पूजेंगे। गुणों की परीक्षा करने से क्या प्रयोजन? उसका निषेध करते हैं –

जो पापिष्ठ गुरु की तुलना सद्गुरु या जिन से करते।
कुगुरु-सुगुरु को एक गिनें, वे शुद्ध धर्म से विमुख रहें।।130।।

श्रद्धान बिना पूजन करना निष्फल है

जिस जिनवर को वन्दन पूजन करते अरु वाणी सुनते।
किन्तु न मानें वचन, कहो क्या लाभ नमन या पूजन से?।।131।।

पूजन से पहले श्रद्धान आवश्यक

जग में भी कोई स्वामी को अप्रसन्न करता न कभी।
कार्य सिद्ध यदि करना चाहे तो उनकी आज्ञा माने।।132।।

पंचम काल की विशेषता

श्रेष्ठ पुरुष हैं दुखी और दुष्टों का उदय हुआ इस काल।
जो न हुए समकित से विचलित धन्य उन्हें मैं करूँ प्रणाम।।133।।

गुरु की परीक्षा करने का उपाय

बुद्धि के अनुसार और सिद्धान्त शुद्धि अरु नय-व्यवहार।
करके सुगुरु परीक्षा जानो काल और क्षेत्रानुसार।।134।।

सच्चे गुरु की प्राप्ति कठिन

तो भी तीव्र उदय या जड़ता से न करें हम गुरु-श्रद्धान।
शुद्ध गुरु का योग जिन्हें है धन्य पुरुष वे हुए कृतार्थ।।135।।

सच्चे गुरु ही शरण हैं

पुण्यवान हो, वचन अगोचर महिमायुत त्यागी गुरु की।
शरण प्राप्त हो मुझे अहो इन युग प्रधान गुरु-चरणों की।।136।।

धर्म को जानने की विधि

बड़े-बड़े ज्ञानी ही जान सकें ऐसा जिनधर्म अगम्य।
तो भी दृढ़ श्रद्धान हेतु व्यवहार मार्ग से है ज्ञातव्य।।137।।

व्यवहार परमार्थ का साधक

जिन-भाषित व्यवहार कहा परमार्थ धर्म का प्रतिपादक।
जिन-आज्ञा आराधक जन को है निर्मल बोधिदायक।।138।।

गुरु की परीक्षा करके ही वंदन करना चाहिए

करें परीक्षा शास्त्रों से फिर पूजें जो गुरु दिखते हैं।
सच्ची श्रद्धा कठिन आज तो निर्मल चारित हो कैसे?।।139।।

शास्त्रानुसार परीक्षा करके ही गुरु मानना चाहिए

आत्मलीनता हेतु बने मध्यस्थ तथा आगम अनुसार।
भेड़चाल तज करें परीक्षा युग-प्रधान गुरु को स्वीकार।।140।।

अज्ञानी गुरु के संग से ज्ञानी भी चलायमान हो जाते हैं

वर्तमान में नाम मात्र धारी भी गुरु कहलाते हैं।
शुद्ध धर्म में निपुण चलित हों भोले तो फँस जाते हैं।।141।।

ज्ञानी जीव ऊपर की ओर बढ़ते हैं

नीचे गिरने वालों का आलम्बन लेते अज्ञानी।
ऊपर चढ़ने में जिनका मन लगता वे होते ज्ञानी।।142।।

सच्चे गुरु की प्राप्ति दुर्लभ

स्वर्ण रत्न इत्यादि वस्तु-विस्तार जगत में सर्व सुलभ।
जो सुमार्ग-रत हैं ऐसे गुरु मिलना निश्चय से दुर्लभ।।143।।

देव गुरु की पूजन से मान चाहना दुश्चारित्र है

देव-गुरु की स्तुति तो अभिमान महाविष शमन करे।
पूर्व पाप का उदय हाय! जो मान पुष्ट करते उससे।।144।।

साधर्मी का साथ न देने वाला जैनी नहीं

जिन-आचार प्रवर्तक के वर्तन में नहिं सहयोग करे।
हाय हाय! वे मूढ़ स्वयं को कैसे जैनी कह सकते।।145।।

जिनेन्द्र देव को माननेवाले विरले

लोक-मान्यताओं को जग में सभी लोग स्वीकार करें।
किन्तु मान्यताएँ जिनवर की विरले जन ही ग्रहण करें।।146।।

**जिसे साधर्मी के प्रति कुटुम्ब से भी अधिक प्रेम नहीं,
उसे सम्यक्त्व का अभाव है**

साधर्मी से द्वेष करें अरु पुत्रादिक से हो अनुराग।
उन्हें नहीं सम्यक्त्व हुआ यह प्रकट जैनशासन का न्याय।।147।।

जिनदेव का मानने वाला अन्य देवों को नहीं मानता

यदि तुम लोकाचार रहित जिनमत को करते हो स्वीकार।
उसे जानते और मानते, कैसे मानो लोकाचार।।148।।

मिथ्यात्व रूपी सन्निपात का इलाज जैन-मत है

जो जिनवर की श्रद्धा करके भी कुदेव को करें नमन।
कौन वैद्य जो दूर करे यह सन्निपात मिथ्यादर्शन।।149।।

जिनदेव-गुरु और धर्मायतनों में भेदभाव करना मूढ़ता है

सभी सुगुरु हैं एक तथा श्रावक अरु जिनप्रतिमायें एक।
मूढ़ एक का द्रव्य दूसरे के हित में नहिं करें निवेश।।150।।

गुरु नहीं वे श्रावक भी नहिं नहीं जिनेश्वर के वे भक्त।
मूढ़ जनों की मिथ्या परिणति, जाने जिनवाणी अनुरक्त।।151।।

धर्मात्मा तथा धर्मायतनों में भेद डालनेवाला गुरु-पद के योग्य नहीं

जो जिनमंदिर श्रावक एवं द्रव्य आदि में भेद कहे।
युगप्रधान वह गुरु नहीं जो प्रवचन में यह बात कहे।।152।।

जिनवाणी के प्रति बहुमान का अभाव मिथ्यात्व का चिह्न

जिन-वचनों से जिसे अहित-हित स्व-पर विवेक नहीं होता।
यह तो है माहात्म्य निविड़ मिथ्यात्व मोह की ग्रन्थि का।।153।।

जिनवाणी का अपलाप महादुख का कारण

बन्धन और मरण के भय का दुख तो कोई दुख नहीं।
दुक्खों में दुख का निधान तो जिन-वच का अपलाप सही।।154।।

आत्मज्ञान बिना श्रावकपना नहीं

प्रभु-वचनों को भली-भाँति जाने पर आत्मा नहिं जाने।
धीर पुरुष को होनेवाला उसको श्रावकपन कैसे?।।155।।

ज्ञानी की भावना ऊपर चढ़ने की ही होती है

यद्यपि मैं उत्तम श्रावक की श्रेणी चढ़ने में असमर्थ।
तो भी प्रभु–वचनों को पालन करने का मेरा मनरथ।।156।।

जिन–वचनानुसार चलने की भावना

शुद्ध भाव से प्रभ–चरणों में नमकर यही प्रार्थना है।
प्रभो! आपके वचन–रत्न को पाने का अति लोभ रहे।।157।।

पंचम काल में मिथ्यात्व की बहुलता

रे! निकृष्ट मिथ्यात्व भाव से गुरु–विवेक भी नहीं रहा।
हमें स्वप्न में भी सुख की अब आशाएँ भी रहीं कहाँ।।158।।

पंचम काल में श्रावकपने की दुर्लभता

जीवन मात्र ग्रहण कर मैंने श्रावक का भी नाम धरा।
दुखद विषम इस कलीकाल का यह भी तो आश्चर्य महा।।159।।

सम्यक्त्व प्राप्ति की भावना

यही भावना कृपा करो प्रभु गुरु साधन का योग मिले।
सत् संगति का लाभ प्राप्त हो सम्यग्दर्शन सुलभ बने।।160।।

अन्तिम निवेदन – ग्रन्थाभ्यास की प्रेरणा

नेमिचन्द्र भण्डारी ने इन गाथाओं की रचना की।
विधि–मार्ग रत भव्य पढ़ें जानें प्राप्ति हो शिवपद की।।161।।

*****

सब दुख नाशक समकित में तुम कभी प्रमाद नहीं करना।
ज्ञान चरित तप वीर्य आदि का समकित ही आधार कहा।।
– भगवती आराधना, छन्द 741

अध्यात्म–रहस्य

मंगलाचरण

(वीरछन्द)

भक्ति-लीन भव्यों को करते जो निज-पद का अनुपम दान।
उन श्री वीरनाथ एवं गौतम गुरुवर को करूँ प्रणाम।।१।।

वन्दन उन गुरुवर को जिनके वचनों से प्रकटे पथ पर-
चलकर योगीजन होते हैं शिव-कामिनि-कटाक्ष के पात्र।।२।।

योग–पारगामी का स्वरूप

जिसके मति-श्रुत-ज्ञाति[1]-दृष्टि सद्गुरु प्रसाद से ही निज में।
क्रमशः थिर होते जाते वे योगी योग पार-गत हैं।।३।।

स्वात्मा का स्वरूप

जो ज्ञानी-अज्ञानी जन के हृदय कमल में नित्य बसे।
'मैं आतम हूँ' इन वचनों से वाच्य निजातम कहलाये।।४।।

शुद्ध स्वात्मा का स्वरूप

जो न किसी से मोह करे अरु राग-द्वेष भी नहीं करे।
दर्श-ज्ञान अरु साम्यरूप जो परिणत वह आत्मा शुद्ध है।।५।।

श्रुति का स्वरूप

आप्त-ज्ञात-उपदिष्ट ध्येय को दृष्टा-इष्ट अविरोध सहित।
धर्म-शुक्ल में आयोजित जो करे वही गुरुवाणी श्रुति।।६।।

मति का स्वरूप

श्रुति द्वारा सम्यक् प्रतिपादित शुद्धात्मा को जो युक्ति।
स्पष्टरूप से करे व्यवस्थित उसे यहाँ हम कहें मति।।७।।

1. ज्ञान।

ध्याति का लक्षण

निज शुद्धातम में जो रहती सदा लीन उस बुद्धि को।
ज्ञानान्तर को स्पर्श करे नहिं यहाँ उसे ध्याति जानो॥८॥

दृष्टि का लक्षण

ज्ञान शरीरी निज शुद्धातम जिससे होता है साक्षात्।
जो स्पष्ट विशिष्ट भाव से वह श्रुतात्म है दृष्टि भ्रात॥९॥

संवित्ति और दृष्टि

जो निज लक्षण से सुलक्ष्य अथवा सुख का अनुभव करती।
लक्ष्य आत्मा, लक्षण दर्शन-ज्ञान युक्त दृग संवित्ति॥१०॥

दृष्टि का माहात्म्य

वही दृष्टि सब दुखद विकल्पों का करती है त्वरित शमन।
परम ब्रह्ममय उस दृष्टि का योगी करते नित्य मनन॥११॥

श्रुतसागर का मंथन एवं दृष्टिप्राप्ति

अत: प्रयोजन-सिद्धि हेतु पहले सागर मथें सुधी।
तब ही होगी शिव-प्राप्ति भी अन्य सभी कुछ है भूसी॥१२॥

सद्गुरु का स्वरूप

जिनके वचनों से होती संवित्ति वे व्यवहार-गुरु।
स्वात्मा ही निश्चय सद्गुरु है अत: वचन अन्तरात्मा हों॥१३॥

रत्नत्रयात्मक निजात्मा ही मोक्षमार्ग

वह रत्नत्रयमय निजात्म ही मोक्षमार्ग, स्पष्ट लखो।
मोक्षार्थी को वही पूछने योग्य, उसे चाहो देखो॥१४॥

निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय

शुद्ध चिदान्दमय स्वात्मा की हो प्रतीति अनुभूति स्थिति।
गौण रत्नत्रय अरु निश्चय, उपयोग उसी में होवे लीन॥१५॥

रत्नत्रयमय आत्मा श्रद्धा करता, बुद्धि को एकाग्र।
करता हुआ स्वसंवेदन, संवेद्य स्वयं में हो एकाग्र॥१६॥

जो यथार्थ वस्तु को लखती हुई स्व-सन्मुख होती है।
उसे यहाँ बुद्धि कहते, हे बन्धु! उदय सम्बन्ध तजो॥१७॥

'मैं ही मैं हूँ' – ऐसे आत्मज्ञान से अन्य वस्तुओं में।
यह मैं इसका कर्त्ता-भोक्ता – यह मान्यता तुरन्त तजूँ॥१८॥

'मैं ही मैं हूँ '- ऐसे अन्तर्जल्प युक्त कल्पना तजो।
वचन अगोचर अविनश्वर ज्योति आतम को स्वयं लखो॥१९॥

आत्मदर्शन का उपाय

जिस-जिस में अपनापन अनुभव करे हृदय वह भिन्न लखो।
ये विकल्प फिर उदित न हों तो स्वच्छ चिदातम भासित हो॥२०॥

आत्मा की विश्वरूपता

आत्मा ज्ञेयाकार अनन्त प्रसार भूमि है, विश्व स्वरूप।
वाणी एवं नेत्र अगोचर, केवल-दृग से ज्ञेय स्वरूप॥२१॥

चैतन्यज्योति का लक्षण

अहंपने की दृष्टि से अन्तवर्ती उपयोग स्वरूप।
अन्यपने से लक्षित पर के लक्षण से है भिन्न स्वरूप॥२२॥

स्व-पर भेद की सिद्धि

जल-अग्निवत् भिन्न-भिन्न लक्षण वाले दो भिन्न रहें।
निज-पर के लक्षण हैं भिन्न अबाधित जानो युक्ति से॥२३॥

उपयोग का स्वरूप एवं भेद

आतम का व्यापार स्व-पर के ग्रहण रूप, उपयोग कहें।
आत्मा तन्मय ज्ञान अर्थगत और शब्दगत दर्शन है॥२४॥

आत्मशुद्धि का मार्ग

स्वयं नहीं होता जो मोही और न रागी-द्वेषी हो।
निज शुद्धात्मा में ही धरता उपयोग वही हो शुद्ध अहो॥२५॥
रागादिक अति उग्र शत्रु की अनुत्पत्ति एवं क्षय हेतु।
शुद्ध चिदानन्द निज आत्मा की सदा भावना है कर्त्तव्य॥२६॥

आत्मा में अशुद्धि का स्वरूप एवं भेद

प्रेम लोभ रति माया एवं हास्य राग है पाँच तरह।
हों मिथ्यात्व सहित तब ये ही मोह, द्वेष क्रोधादिक छह॥२७॥

मोह-राग-द्वेष का स्वरूप एवं फल

है सब द्रव्य उपेक्षणीय पर इष्ट-बुद्धि से ग्रहण करें।
हों प्रसन्न अरु अहित कल्पना करके जग में दुखी रहें॥२८॥

अविद्या का स्वरूप

इन्द्रिय सुख शुभगति में एवं दुर्गति में दुख होता है।
यही अविद्या मोह-जन्य, जो विद्या द्वारा छेद्य कहें॥२९॥

विद्या का स्वरूप (सच्चिदानंदमय स्वरूपानुभव)

निश्चय से है ब्रह्म सत् चिदानन्दरूप, वह मैं ही हूँ।
करूँ यही अभ्यास निरन्तर निर्मल निज में लीन रहूँ॥३०॥

आत्मा का सत्स्वरूप

व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यमय सत् हूँ, स्व-द्रव्यादि चतुष्टय से।
अनुभव करता, और असत् हूँ, पर-द्रव्यादि चतुष्ट्य से॥३१॥
सर्व पदार्थ परस्पर भिन्न कथंचित् – ऐसा ज्ञान लिया।
अत: जगत् मैं नहीं और मैं जैसा हूँ वह जगत् नहीं॥३२॥

चित्स्वरूप आत्मा

जिसने चेता है अनादि से और आज भी चेत रहा।
जो अनन्त तक चेतेगा मैं हूँ वह चेतन द्रव्य रहा॥३३॥
पूर्वरूप से हो विनष्ट अरु वर्तमान में हो उत्पन्न।
'यह वह ही है' इसप्रकार सत् रूप ज्ञान है सिद्ध स्वयं॥३४॥
सभी द्रव्य हैं द्रव्य अनादि पर्यायों से सिद्ध स्वयं।
तद्वत् मैं भी भिन्न अन्य से चित्-परिणति से सिद्ध स्वयं॥३५॥
गुण-पर्यायों युक्त द्रव्य है गुण सहभावी होते हैं।
पर्यायें व्यतिरिक्त और चैतन्य अन्वयी निज गुण हैं॥३६॥
पुद्गल रूपी, धर्म द्रव्य है गति-उपकारी दोनों को।
स्थिति-उपकारी अधर्म है काल द्रव्य परिवर्तन में॥३७॥
सब द्रव्यों के लिए हेतु अवगाहन में आकाश लखो।
सबकी सूक्ष्म अर्थ-पर्यायें प्रतिक्षण पाती हैं क्षय को॥३८॥
जीव और पुद्गल की व्यंजन-पर्यायें वाणी-गोचर।
मूर्त अनश्वर द्रव्यरूप अरु द्रव्य रहे उनसे तन्मय॥३९॥
मोती और सफेदी दिखते भिन्न-भिन्न पर[1] हार सभी।
मुझ चेतन में चेतन की पर्यायें एकमेक दिखतीं॥४०॥

आत्मा का आनन्द स्वभाव

इन्द्र चक्रि अहमिन्द्रों को भी जो आनन्द नहीं होता।
उस शाश्वत आनन्द को मैं अपने में ही अनुभव करता॥४१॥

आत्मविकास उपाय

यह अज्ञान उपेक्षा नामक विद्या से हो सतत विनष्ट।
मुझमें मुझ स्वरूप की क्रमशः प्राप्ति चरम सीमा पर्यन्त॥४२॥

---

1. परन्तु।

योगी का स्वरूप संचेतन

पर्यायों से सभी वस्तु विस्ताररूप आकार अनेक।
द्रव्य दृष्टि से किसी शब्द का वाच्य नहीं मैं हूँ नित एक॥४३॥

परम ब्रह्म की प्राप्ति हेतु आत्मसंस्कार

वचन-अगोचर परम-ब्रह्म की प्राप्ति हेतु अब इस मन को।
'मैं' इस सूक्ष्म शब्द ब्रह्म के द्वारा संस्कारित करना॥४४॥

आठ पंखुड़ी युक्त अधोमुख कमल-द्रव्यमन-उर सर में।
खिला योग-रवि से, उसमें स्फुरित परम ज्योर्तिमय मैं॥४५॥

मोह क्षीण होने पर इन्द्रिय-मन वायु भी होती अस्त।
पर से शून्य, अशून्य स्वयं से अन्तर्दृष्टि से मैं दृश्य॥४६॥

परम-एकाग्रता से संवर-निर्जरा

इस प्रकार मैं लखूँ स्वयं को निज में ही होता एकाग्र।
संवर-निर्जर रूप स्वयं हो भोगूँ मैं आत्मज आनन्द॥४७॥

योगी का पूर्व परिणति पर खेद

वास्तव में चित्शक्ति अनन्तानन्त युक्त होने पर भी।
मैं अनादि संस्कार-अविद्या वश इन्द्रिय-मन द्वारा ही॥४८॥

बहिर्जगत में लीन रहा जिस तन में स्थिर रहता हूँ।
उसमें अपनापन कर उसकी वृद्धि-हानि अपनी मानूँ॥४९॥

इसी तरह भार्या का आत्मा जिस तन में स्थित रहता।
उसे आत्मा जान, उन्हीं के सुख-दुख में भागी होता॥५०॥

भ्रान्ति की निवृत्ति होने पर आनन्द का अनुभव

अब अपने या अन्य आत्माओं को आत्मा ही जानूँ।
और देह को देह जानकर निर्विकार सम-रस पीऊँ॥५१॥

योगी की वैराग्य परिणति

तत्त्वज्ञान एवं वैराग्य-नियन्त्रित चित् की खान अहो।
मम इन्द्रियाँ नहीं जीवित, नहिं मृतक सुप्त-जागृत भी नहिं॥५२॥
संस्कारोत्पत्ति अवरोधक विशद ज्ञान सन्तान जगें।
मम कल्पना अजाग्रत स्मृति आदि का क्यों स्मरण करें॥५३॥

स्वानुभूति वृद्धि हेतु निश्चल-स्वरूप अनुभव करता।
हेय-बाह्य तज रत्नत्रयमय निज स्वरूप भोक्ता होता॥५४॥

अशुभ भाव तज श्रुताभ्यास से शुभ का अवलबन लेकर।
अधिक-अधिक शुद्धोपयोग में लीन रहूँ यह ही निष्ठा॥५५॥

अशुभ-शुभ एवं शुद्ध उपयोग

राग-द्वेष अरु मोह युक्त परिणति अशुभोपयोग जानो।
जिन-प्रणीत धर्मानुराग शुभ आत्म लीनता शुद्ध अहो॥५६॥

वह ही मैं हूँ वह ही मैं हूँ – यही भावना भाता हूँ।
निज स्वरूप में हुई लीनता इस निशब्द को योग कहो॥५७॥

योगी की निर्भयता

शुद्ध बुद्ध चिद्रूप परम आनन्द में लीन सन्त योगी।
नहिं भयभीत किसी से होते भावक के अनुभव भोगी॥५८॥

परम-एकाग्रता से जीवनमुक्ति

परम लीन योगीश्वर गण अशुभास्रव का निरोध करते।
पूर्व कर्म क्षय करते, जीवित रहें किन्तु निर्वृत्त रहें॥५९॥

योगी के सर्व कर्मत्याग की भावना

भावकर्म रागादिक ज्ञानावरणादिक जड़ कर्म तथा।
देहादिक नोकर्म बाह्य द्रव्यों को मैं हूँ अब तजता॥६०॥

भावकर्म का स्वरूप

इष्ट अर्थ की प्रीतिरूप अपनेपन से भाये जाते।
इनके वश हो कर्त्ता-भोक्ता भावकर्म ये कहलाते।।६१।।

द्रव्यकर्म का स्वरूप

जिन जड़-कर्मों द्वारा ज्ञान-निरोध आदि विकृत पर्याय।
चेतन होने पर भी आत्मा में हों द्रव्य-कर्म कहलाय।।६२।।

नोकर्म का स्वरूप

जीवों में कर्मोदय के वश देहादिक सब अर्थ विशेष।
वृद्धि-हानिमय जो पुद्गल हों वे नोकर्म कहें परमेश।।६३।।

स्वात्मोपलब्धि के लिए हेय-उपादेय

सिद्धि प्राप्ति के हेतु सुनिश्चय दर्शनादि हैं ग्राह्य मुझे।
इससे भिन्न दर्शनादिक-व्यवहार नहीं हैं ग्राह्य मुझे।।६४।।

परम शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि

परम शुद्ध निश्चय से मुझको, हेय नहीं कुछ ग्राह्य नहीं।
यत्नसाध्य या सहजसाध्य हो सिद्धि प्राप्ति हो बस मुझको।।६५।।

कर्तृत्व का त्याग एवं भवितव्यता का ग्रहण

गुरु-उपदेशों से जिन-शासन सार समझने का व्यवसाय।
किया, अत: कर्त्तृत्व-भाव तज होनहार का लो आश्रय।।६६।।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

शुद्ध-बुद्ध चिद्रूप आत्म की रुचि निश्चय सम्यक्त्व अहो।
अन्य पदार्थों की रुचि है सम्यग्दर्शन व्यवहार कहो।।६७।।

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

निर्विकल्प स्व-संवेदन है निश्चयनय से सम्यग्ज्ञान।
और पदार्थों का सविकल्प ग्रहण व्यवहार कहे सद्ज्ञान।।६८।।
ज्ञेयों के सम्मिश्रण से जो शब्द-गम्य होता वह ज्ञान।
वाचक होते शब्द अत: सविकल्प रूप होता वह ज्ञान।।६९।।

सम्यक्चारित्र का स्वरूप

सावद्य योग से निवृत्ति व्यवहार कहे सम्यक् चारित्र।
निश्चय से कर्मोच्छेदक आनन्दघन वृत्ति ही चारित्र।।७०।।

निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय ही कल्याणभूत

तत्त्वार्थों का अभिनिवेश, निर्णय तपरूप आत्म-परिणाम।
आत्मा का सम्यग्दर्शन अरु ज्ञान-लीनतामय परिणाम।
लब्धिवशात् विकल या पूर्ण शुद्धिरूप में होता प्राप्त।
भव्यों को प्रिय उभय रत्नत्रय करे सभी जन का कल्याण।।७१।।

शुद्धात्मा की महिमा एवं शुद्धात्मोपलब्धि की कामना

जो शाश्वत आनन्दमयी, योगीश्वर करते जिनका ध्यान।
जिससे प्रेरित सकल विश्व सुरपतिगण करते जिन्हें नमन।।
जिससे ज्ञात विचित्र जगत यह जिसकी श्रद्धा शिवपथ रूप।
परम ब्रह्म मम हृदय बसे जिसमें लय होना मुक्ति स्वरूप।।७२।।

*****

उनकी चिन्ता हमें नहीं...

सकल विभाव असत् होने से, उनकी चिन्ता हमें नहीं।
हम तो हृदय-कमल में स्थित, एक शुद्ध आतम का ही-
'सर्व कर्म से मुक्त सदा हूँ' सतत अनुभवन हैं करते।
क्योंकि मुक्ति का मार्ग नहीं है, अन्य किसी भी कारण से।।
– नियमसार, कलश 34

देवागम स्तोत्र

(दोहा)

करें आप्त मीमांसा, समन्तभद्राचार्य।
प्रस्तुत है अनुवाद यह, भविजन को हितकार।।

।। प्रथम परिच्छेद ।।

(वीरछन्द)

देवागमादि विभूतियाँ आप्त-गुरुत्व की हेतु नहीं

देवागमन तथा नभ में गति, छत्र चँवर अनुपम छविमान।
मायावी जन में भी दिखते, मात्र इसलिए नहीं महान।।1।।

बहिरन्तर विग्रहादि महोदय आप्त-गुरुत्व का हेतु नहीं

बाह्यान्तर अतिशय तन के भी, देवों में देखे जाते।
इसीलिए प्रभु, इस वैभव से नहीं पूज्यता को पाते।।2।।

तीर्थंकरत्व भी आप्त-गुरुत्व की हेतु नहीं

आगम के आधार तथा, जो धर्मतीर्थ के संचालक।
उनमें है विरोध, आप्त सब नहीं, एक हो प्रतिपालक।।3।।

दोषों तथा आवरणों की पूर्ण हानि संभव

दोष और आवरण हानि अतिशायन हेतु दिखलाता।
अन्तर्बाह्य मलक्षय भी है, ध्यान-अग्नि से हो जाता।।4।।

सर्वज्ञ संस्थिति

सूक्ष्म और दूरस्थ अन्तरित, विशद ज्ञानवर्ती होते।
हैं अनुमेय यथा अग्न्यादि, अत: सर्वज्ञ सिद्ध होते।।5।।

निर्दोष सर्वज्ञ कौन और किस हेतु से?

युक्ति-शास्त्र अविरोधी वचनों से हे जिन! तुम हो निर्दोष।
तुम्हें इष्ट जो वह अविरोधी, प्रत्यक्षादि न देते दोष।।6।।

सर्वथैकान्तवादी आप्तों का स्वेष्ट प्रमाण-बाधित

प्रभु के मत-अमृत से बाहर जो एकान्त सर्वथावाद।
अरे! दग्ध आप्ताभिमान से, इष्ट तत्त्व जो उसमें बाध।।7।।

सर्वथैकान्त-रक्तों के शुभाशुभ कर्मादिक नहीं बनते

एकान्तों के आग्रह से जो ग्रस्त स्व-पर के बैरी हैं।
कर्म शुभाशुभ पुनर्जन्म की अव्यवस्था अतिगहरी है।।8।।

भावैकान्त की सदोषता

वस्तु यदि एकान्त भावमय, हो अभाव नहिं किंचित् भी।
सब सर्वात्मक अस्वरूपी, बिन आदि-अन्त स्वीकार नहीं।।9।।

प्रागभाव-प्रध्वंसाभाव के विलोप में दोष

यदि नहिं मानें प्रागभाव तो, कार्यारम्भ नहीं होगा।
यदि प्रध्वंस-अभाव न मानें, अन्त कार्य का नहिं होगा।।10।।

अन्योन्याभाव-अत्यंताभाव के विलोप में दोष

यदि अन्योन्याभाव न हो तो एकरूप हों सब पुद्गल।
यदि अत्यन्ताभाव न मानें सर्व द्रव्य सबमय तिहुँकाल।।11।।

अभावैकान्त की सदोषता

यदि अभाव सर्वथा वस्तु का, भावों का सर्वथा निषेध।
अप्रामाणिक हों ज्ञानवचन, निज-पर मंडन-खंडन कैसे।।12।।

उक्त उभय और अवक्तव्य एकान्तों की सदोषता

द्वय एकान्तों में विरोध है, स्याद्वाद विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो वस्तु वाच्य इस वाणी से।।13।।

उक्त एकान्तों की निर्दोष-विधि-व्यवस्था

तुम्हें इष्ट है वस्तु कथंचित् सत्ता और असत्तारूप।
उभय कथंचित् नयपद्धति से, नहीं सर्वथा वस्तु-स्वरूप।।14।।

सत् असत् मान्यता की निर्दोष विधि

द्रव्य क्षेत्र निज काल भाव से, सत् पदार्थ नहिं माने कौन।
और असत् परद्रव्य आदि से नहिं मानें अव्यवस्थित भौन।।15।।

उभय तथा अवक्तव्य की निर्दोष मान्यता में हेतु

यदि क्रम से कहना चाहें तो वस्तुरूप है भाव-अभाव।
अक्रम से है अवक्तव्य यह, शेष भंग स्वापेक्ष स्वभाव।।16।।

अस्तित्व धर्म नास्तित्व के साथ अविनाभावी

अस्तित्व धर्म नास्तित्व धर्म से अविनाभावी, धर्मी में।
क्योंकि विशेषण है वह, जैसे अन्यव संग व्यतिरेक रहें।।17।।

नास्तित्व धर्म अस्तित्व के साथ अविनाभावी

नास्तित्व धर्म अस्तित्व धर्म से अविभावी, धर्मी में।
क्योंकि विशेषण है वह, ज्यों वैधर्म्य रहे संग अन्वय के।।18।।

शब्दगोचर-विशेष्य विधि निषेधात्मक

क्योंकि वचनगोचर विशेष्य है अतः विधि-प्रतिषेध स्वरूप।
यथा, साध्य में हेतु भी है अन्यापेक्ष[1] अहेतु स्वरूप।।19।।

1. अन्य अपेक्षा से।

शेष भंग भी नय-योग से अविरोधरूप

शेष भंग भी कथित नयों के द्वारा होते हैं ज्ञातव्य।
इनमें नहिं कोई विरोध है हे मुनीन्द्र! तव शासन में।।20।।

वस्तु का अर्थक्रियाकारित्व कब बनता है

विधि-निषेध से नहीं अवस्थित हो पदार्थ तो, अर्थ क्रिया-
नहिं हो सकती, जैसे बाह्यान्तर कारण से कार्य कहा।।21।।

धर्म-धर्म में अर्थभिन्नता और धर्मों की मुख्य-गौणता

वस्तु अनन्त धर्ममय उसके धर्म-धर्म में अर्थ अपूर्व।
एक धर्म जब हो प्रधान तो शेष धर्म होते हैं गौण।।22।।

उक्त भगवती प्रक्रिया की एकानेकादि विकल्पों में भी योजना

इसी सप्तभंगी शैली को एक अनेक आदि में भी।
आगे भी नय-भंगों द्वारा जानें, नय-ज्ञाता ज्ञानी।।23।।

।। द्वितीय परिच्छेद ।।

अद्वैत-एकान्त की सदोषता

यदि अद्वैत सर्वथा मानें तो कारक-किरिया का भेद-
तथा दृष्ट से भी विरोध हो, क्योंकि एक से नहिं उत्पत्ति।।24।।

कर्मफलादि को कोई भी द्वैत नहीं बनता

कर्म-द्वैत फल-द्वैत और नहिं होता सिद्ध, लोक का द्वैत।
विद्या और अविद्या दोनों, बंध-मोक्ष भी सिद्ध न हों।।25।।

हेतु आदि से अद्वैत-सिद्धि में द्वैतापत्ति

यदि अद्वैत की सिद्धि, हेतु से हो तो हेतु-साध्य का द्वैत।
बिना हेतु के सिद्ध करें तो वचन मात्र से क्यों नहिं द्वैत।।26।।

द्वैत के बिना अद्वैत नहीं होता

ज्यों अहेतु बिन हेतु नहीं हो, त्यों अद्वैत नहिं द्वैत बिना।
संज्ञी का अस्तित्व नहीं प्रतिषेध्य और प्रतिषेध बिना।।27।।

पृथक्त्व एकान्त की सदोषता

यदि पृथक्त्व ही मानें तो वह पृथक् द्रव्य से या अपृथक्?
पृथक् कहो तो गुण न रहा वह कहते त्यों अनेक में एक।।28।।

एकत्व के लोप में सन्तानादिक नहीं बनते

यदि निषिद्ध एकत्व सर्वथा तो संतान और समुदाय।।
प्रेत्य भाव साधर्म्य आदि की सिद्धि नहीं होती निर्बाध।।29।।

ज्ञान को ज्ञेय से सर्वथा भिन्न मानने में दोष

ज्ञान-ज्ञेय सत्रूप पृथक् सर्वथा कहें तो नहिं दोनों।
ज्ञान नहीं तो बाह्यान्तर नहिं ज्ञेय आपके द्वेषी को।।30।।

वचनों को सामान्यार्थक मानने में दोष

सामान्यार्थक ही यदि वाणी मानें और न कहे विशेष।
तो सामान्य अवस्तु हो गया, सभी वचन मिथ्या होंगे।।31।।

उभय तथा अव्यक्त एकान्त की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।32।।

पृथक्त्व-एकत्व एकान्तों का अवस्तुत्व-वस्तुत्व

हैं अवस्तु हेतु-द्वय से निरपेक्ष पृथक्त्व और एकत्व।
यदि सापेक्ष कहें दोनों को, सो वस्तुत्व यथा-साधन।।33।।

एकत्व-पृथक्त्व एकान्तों की निर्दोष व्यवस्था

सत् सामान्य-विवक्षा से है सभी एक, द्रव्यादि पृथक्-
भेदाभेद विवक्षा से, ज्यों हेतु-असाधारण कहते।।34।।

विवक्षा तथा अविवक्षा सत् की ही होती है

हो धर्मी-अनंत विशेष्य में ही अविवक्षा-विवक्षा।
जो सत्-रूप विशेषण की ही, अर्थी और अनर्थी से।।35।।

एक वस्तु में भेद और अभेद की अविरोध-विधि

भेदाभेद प्रमाण-गम्य परमार्थरूप, उपचार नहीं।
एक वस्तु में दोनों हैं अविरुद्ध गौण अरु मुख्यपने।।36।।

।। तृतीय परिच्छेद ।।

नित्यत्व एकान्त की सदोषता

नित्यैकान्त पक्ष मानें तो नहीं विक्रिया हो उपपन्न।
पहले ही कारक-अभाव है कहाँ प्रमाण कहाँ तत्फल?।37।।

प्रमाण और कारकों के नित्य होने पर विक्रिया कैसी?

व्यक्त कहो कारक-प्रमाण से यदि इन्द्रिय के विषय समान।
वे भी नित्य, अतः विकार्य हो सके न, प्रभु तव शासन-बाह्य।।38।।

कार्य के सर्वथा सत् होने पर उत्पत्ति आदि नहीं बनती

कार्य सर्वथा सत् मानें तो, पुरुष-समान न हो उत्पन्न।
वस्तु में परिणाम-कल्पना ही एकान्त-नित्य बाधक।।39।।

नित्यत्वैकान्त में पुण्य-पापादि नहीं बनते

पुण्य-पाप की क्रिया न हो परलोक-गमन नहिं, फल कैसे?
बंध-मोक्ष भी उस मत में नहिं, जहाँ प्रभु नहिं तुम जैसे।।40।।

क्षणिक-एकान्त की सदोषता

क्षणिकैकान्त पक्ष में भी पर-भव गमनादि असंभव हैं।
प्रत्यभिज्ञानादिक अभाव से कार्यारंभ न हो फल हो।।41।।

कार्य के सर्वथा असत् होने पर दोषापत्ति

कार्य सर्वथा असत् कहो तो हो आकाश-कुसुम जैसा।
उपादान का नियम न हो विश्वास न कार्योत्पत्ति का।।42।।

क्षणिकैकान्त में हेतुफल-भावादि नहीं बनते

अन्वय हो सर्वथा असत् तो हेतु-भाव फल-भाव नहीं।
संतानी-संतान पृथक् नहिं अन्य भाव सर्वथा नहीं।।43।।

संवृति और मुख्यार्थ की स्थिति

अन्यों में अनन्य शब्द सर्वथा कल्पना, क्यों न मृषा?
मुख्य अर्थ संवृत्ति नहीं है संवृति नहिं मुख्यार्थ बिना।।44।।

चतुष्कोटि विकल्प के अवक्तव्य की बौद्ध मान्यता

सब धर्मों को चार भंग से कहना पूर्ण अयोग्य अरे!
इसीलिए संतान और संतानी तत्त्व अवाच्य कहें।।45।।

अवक्तव्य की उक्त मान्यता में दोष

तो चउ भंगी अवक्तव्य है, यह भी कहा न जा सकता।
सर्व धर्म बिन वस्तु असत् है क्योंकि विशेष्य-विशेषण न।।46।।

निषेध सत् का होता है, असत् का नहीं

सत् पदार्थ का ही निषेध हो, परद्रव्यादि अपेक्षा से।
जो पदार्थ सर्वथा असत् वह विधि-निषेध का विषय नहीं।।47।।

अवस्तु की अवक्तव्यता और वस्तु की अवस्तुता

सब धर्मों से रहित सर्वथा है अवस्तु, नहिं होती वाच्य-
होने से विपरीत प्रक्रिया अवस्तुत्व को वस्तु प्राप्त।।48।।

सर्व धर्मों के अवक्तव्य होने पर उनका कथन नहीं बनता

सभी धर्म हों अवक्तव्य तो कैसे उनका वचन प्रयोग?
यदि कहते उपचार किन्तु वह मृषा, क्योंकि परमार्थ नहीं।।49।।

अवाच्य का हेतु अशक्ति, अभाव या अबोध

अवाच्यत्व का कारण क्या है - कमजोरी अज्ञान अभाव?
पहले दो कारण संभव नहिं, क्यों न कहो स्पष्ट अभाव।।50।।

क्षणिकैकान्त में हिंसा-अहिंसा की विडम्बना

हिंसा इच्छुक करे न हिंसा हिंसक इच्छा बिन ठहरे।
जो दोनों से रहित, बँधे वह, जो बँधता वह मुक्त न हो।।51।।

नाश को निर्हेतुक मानने पर दोषापत्ति

यदि विनाश को कहो अहेतुक, हिंसा हेतु न हो हिंसक।
चित् संतति के नाश रूप शिव भी, हेतुक-अष्टांग न हो।।52।।

विरूप कार्यारम्भ के लिए हेतु की मान्यता में दोष

हेतु-समागम यदि चाहो विसदृश्य कार्य के लिए सुनो!
उभय आश्रयी से अनन्य वह हेतु, संयुक्त-समान लखो।।53।।

स्कन्धादि के स्थित्युत्पत्ति व्यय नहीं बनता

स्कन्ध संतति है उपचार अतः अकार्य, तो हेतु न हो।
स्थिति-व्यय-उत्पत्ति न उनकी जानो खर-विषाण जैसी।।54।।

उभय तथा अवक्तव्य एकान्तों की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।55।।

नित्य-क्षणिक-एकान्तों की निर्दोष व्यवस्था विधि

प्रत्यभिज्ञान न आकस्मिक, निर्बाध, वस्तु को नित्य कहे।
काल-भेद से क्षणिक कहो अन्यथा बुद्धि संचार न हो।।56।।

उत्पाद-व्यय सामान्य का नहीं, विशेष का होता है

सामान्यरूप से नहिं उत्पाद-विनाश, व्यक्त है अन्वयरूप।
व्यय-उत्पाद विशेषरूप से, सत् है एक साथ त्रयरूप।।57।।

उत्पादादि की भिन्नता और निरपेक्ष होने पर अवस्तुता

कारण का क्षय वही कार्य-उत्पाद, उभय के लक्षण भिन्न।
यदि उत्पादादिक सापेक्ष न हो, तो जानो आकाश-कुसुम।।58।।

एक द्रव्य की नाशोत्पाद-स्थिति में भिन्न भावों की उत्पत्ति

घट-मौलि-स्वर्णेच्छुक को हों व्यय-उत्पाद-रु स्थिति में।
शोक प्रमोद तथा समता हो, ये सब भाव सहेतुक हैं।।59।।

वस्तुतत्त्व की त्रयात्मकता

दुग्ध-व्रती[1] नहिं दही गहे, नहिं दूध गहे जो दही-व्रती।
जिसे अगोरस-व्रत वह दोनों गहे न, तत्त्व त्रयात्मक ही।।60।।

।। चतुर्थ परिच्छेद ।।

कार्य-कारणादि की सर्वथा भिन्नता का एकान्त

कारण और कार्य हों भिन्न सर्वथा, गुणी और गुण भी।
सामान्य तथा सामान्यवान यदि मानो भिन्न सर्वथा ही।।61।।

1. दूध का त्यागी।

उक्त भिन्नतैकान्त में दोष

एक, अनेकों में न रहे नहिं उसके नहीं विभाग, निरंश।
भागित्वरूप से भी एकत्व नहीं, यह दोष अनाहित में।।62।।

देश काल से भी विशेष माने, वृत्ति युत-सिद्ध यथा।
मूर्तिक कारण और कार्य में एकदेशता में बाधा।।63।।

यदि समवायी आश्रय और आश्रयी, कहो स्वतंत्र नहीं।
समवायी में युक्त नहीं संबंध, अतः यह ठीक नहीं।।64।।

सामान्य और समवाय एक में ही हो जाते पूर्ण अरे!
तो उत्पाद-विनाशरूप कार्यों में कैसे हो सद्भाव।।65।।

सामान्य और समवायों में कहते एकान्त-अनभिसंबंध।
तो उनसे संबद्ध न वस्तु वे तीनों आकाश-कुसुम।।66।।

यदि एकान्त-अनन्य अणु तो स्कन्धों में भी भिन्न रहें।
असंबद्धता होने से हो भूतचतुष्ट भी भ्रांति स्वरूप।।67।।

अनन्यता एकान्त की सदोषता

कार्य-भ्रांति से अणु-भ्रांति हो, कारण, कार्यलिंग से ज्ञात।
उभय-भ्रांत हो तो अंतस्थ जाति गुण क्रिया आदि भी भ्रांत।।68।।

कार्य की भ्रान्ति से कारण की भ्रान्ति तथा उभयाभावादिक

उन्हें[1], सर्वथा एक कहें तो एक नहीं तो अन्य नहीं।
द्वित्व प्रतीति में भी विरोध हो संवृति भी तो सत्य नहीं।।69।।

उक्त उभय तथा अवक्तव्य एकान्तों की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।70।।

1. कारण और कार्य।

एकता और अनेकता की निर्दोष व्यवस्था

द्रव्य और पर्याय एक हैं क्योंकि सर्वथा-भिन्न नहीं।
परिणामी-परिणाम भेद है शक्तिमान शक्ति का भी।।71।।

संज्ञा संख्या लक्षण और प्रयोजन से भी भिन्न कहें।
द्रव्य और पर्याय कथंचित् भिन्न लखो, सर्वथा नहीं।।72।।

।। पंचम परिच्छेद ।।

सिद्धि के आपेक्षिक-अनापैक्षिक एकान्तों की सदोषता

यदि आपेक्षिक सिद्धि करें तो कोइ एक भी नहिं ठहरे।
यदि निरपेक्ष करें सिद्धि सामान्य-विशेषपना न रहे।।73।।

उक्त उभय तथा अवक्तव्य एकान्तों की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।74।।

उक्त आपेक्षिकादि एकान्तों की निर्दोष व्यवस्था

अविनाभाव धर्म धर्मी का सिद्ध परस्पर होता है-
नहिं स्वरूप वह स्वतः सिद्ध है जैसे कारक-ज्ञापक अंग।।75।।

।। षष्ठ परिच्छेद।।

सर्वथा हेतुसिद्ध तथा आगमसिद्ध एकान्तों की सदोषता

हेतु से हो सिद्धि सर्वथा सिद्धि न प्रत्यक्षादिक से।
आगम से हो सिद्धि सर्वथा तो विरुद्ध मत की सिद्धि।।76।।

उक्त उभय तथा अवक्तव्य एकान्तों की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।77।।

हेतु तथा आगम से निर्दोष सिद्धि की दृष्टि

यदि वक्ता हो आप्त नहीं, तो हेतु से साधित-सिद्धि।
यदि वक्ता हो आप्त, उन्हीं के वाक्यों से आगम-सिद्धि।।78।।

अन्तरंगार्थता-एकान्त की बौद्ध-मान्यता सदोष

अंतरंग एकांत अर्थ हो बुद्धि-वाक्य सब मृषा हुए।
सभी प्रमाणाभास हुए, पर बिन-प्रमाण भी वे कैसे।।79।।

विज्ञप्ति-मात्रता के एकान्त में साध्य-साधनादि नहीं बनते

साध्य और साधन विज्ञप्ति मात्र यदि मानी जाये।
साध्य-हेतु नहिं सिद्ध हो सकें हेतु-प्रतिज्ञा में हो दोष।।80।।

बहिरंगार्थता-एकान्त की सदोषता

यदि बहिरंगैकान्त अर्थ हो तो आभास-प्रमाण विलोप।
तो विरुद्ध अर्थों के प्रतिपादक के कार्य सिद्ध सब हों।।81।।

उक्त उभय तथा अवक्तव्य एकान्तों की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।82।।

उक्त दोनों एकान्तों में अपेक्षा-भेद से सामंजस्य

प्रभु के मत में भाव-प्रमेयापेक्षा लुप्त प्रमाणाभास।
बाह्य प्रमेयापेक्षा होते सिद्ध प्रमाण-प्रमाणाभास।।83।।

जीव शब्द संज्ञा होने से सबाह्यार्थ है

जीव शब्द बाह्यार्थ सहित है क्योंकि संज्ञा, हेतु-समान।
माया आदि बाह्य-संज्ञा भी हैं निजार्थ-सह प्रमा-समान।।84।।

संज्ञात्व-हेतु में व्यभिचार-दोष का निराकरण

बुद्धि शब्द अरु अर्थ वचन हैं बुद्धि आदि के वाचक तुल्य।
बुद्धि शब्द अरु अर्थबोध भी इनके ही प्रतिबिंबक तुल्य।।85।।

संज्ञात्व हेतु में विज्ञानाद्वैतावादी की शंका का निरसन

वक्ता श्रोता और प्रमाता के जो बोध-रु वाक्य प्रमा।
ये सब भिन्न भिन्न, यदि प्रमा-भ्रांत कहो तो भ्रांत पदार्थ।।86।।

बुद्धि तथा शब्द की प्रमाणता और सत्यानृत की व्यवस्था बाह्यार्थ के होने न होने पर निर्भर

बाह्य अर्थ हों या नहिं तो ही बुद्धि-शब्द प्रमाण-इतर।
अर्थ-प्राप्ति अथवा अप्राप्ति से सत्यासत्य व्यवस्था हो।।87।।

।। अष्टम परिच्छेद ।।

दैव से सिद्धि के एकान्त की सदोषता

अर्थ-सिद्धि[1] सर्वथा दैव से पौरुष से हो कैसे दैव?
दैवान्तर से दैव-सिद्धि तो मोक्ष असत्, पौरुष निष्फल।।88।।

पौरुष से सिद्धि के एकान्त की सदोषता

पौरुष से ही अर्थ-सिद्धि तो भाग्य बिना कैसे पुरुषार्थ?
पौरुष से पुरुषार्थ कहो तो सफल होय सबका पुरुषार्थ।।89।।

उभय तथा अवक्तव्य-एकान्तों की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।90।।

दैव-पुरुषार्थ-एकान्तों की निर्दोष-विधि

इष्टानिष्ट अबुद्धिपूर्वक होते अपने भाग्य प्रमाण।
बुद्धिपूर्वक इष्टानिष्ट कार्य होते पुरुषार्थ प्रमाण।।91।।

1. प्रयोजन सिद्धि।

।। नवम परिच्छेद ।।

पर में दुख-सुख से पाप-पुण्य के एकान्त की सदोषता

दुखी करें पर को तो पाप नियम से हो, सुख दें तो पुण्य-
हो तो, वीतराग अरु जड़ भी हैं निमित्त, तो उनको बंध।।92।।

स्व में दुख-सुख से पुण्य-पाप के एकान्त की सदोषता

खुद को दुखी-सुखी करने से पाप-पुण्य का होय नियम।
वीतराग विद्वान मुनिजन बँधें, क्योंकि सुख-दुखी स्वयं।।93।।

उभय तथा अवक्तव्य एकान्तों की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।94।।

पुण्य-पाप की निर्दोष व्यवस्था

निज-पर के सुख-दुख का कारण यदि विशुद्धि हो या संक्लेश।
पुण्य-पाप का आस्रव होना युक्त, अन्यथा व्यर्थ जिनेश।।95।।

।। दशम परिच्छेद ।।

अज्ञान से बन्ध का और अल्प ज्ञान से मोक्ष का एकान्त

अल्प ज्ञान से ही बंधन हो, ज्ञेय-अनंत न हो सर्वज्ञ।
अल्प ज्ञान से मुक्ति हो तो बहु-अज्ञान करे बंधन।।96।।

उभय और अवक्तव्य एकान्तों की सदोषता

दो-एकान्तों में विरोध है स्याद्वाद-विद्वेषी के।
यदि सर्वथा अवाच्य कहें तो, वस्तु वाच्य इस वाणी से।।97।।

अज्ञान-अल्प ज्ञान से बन्ध-मोक्ष की निर्दोष-विधि

मोह सहित अज्ञान बंध का कारण है, नहिं मोह-विहीन।
मोह रहित जो अल्प ज्ञान है शिव-पथ, किन्तु नहीं मोही।।98।।

कर्मबन्धानुसार संसार विविध रूप और बद्ध जीव शुद्धि-अशुद्धि के भेद से दो भेद रूप

कर्म-बंध अनुसार यथा कामादि-जन्य संसार विचित्र।
कर्म-बंध हो निज हेतु से बँधे जीव हैं शुद्ध अशुद्ध।।99।।

शुद्धि-अशुद्धि दो शक्तियों की सादि-अनादि व्यवस्था

शुद्धि-अशुद्धि शक्ति होती है पाक्य-अपाक्य शक्ति-समान।
सादि-अनादि व्यक्ति है उनकी, तर्कगम्य नहिं वस्तु-स्वभाव।।100।।

प्रमाण का लक्षण और उसके भेद

तत्त्वज्ञान प्रमाण आपका युगपत् सकल अर्थ जाने।
स्याद्वाद नय से संस्कारित है परोक्ष, क्रमशः जाने।।101।।

प्रमाणों का फल

प्रथम[1] ज्ञान-फल कही उपेक्षा हेय ग्राह्य धी अन्यों का[2]।
तथा उपेक्षा भी उनका फल अज्ञान नाश है फल सबका[3]।।102।।

स्यात् निपात की अर्थ-व्यवस्था

अनेकांत का द्योतक और विशेषण गम्य-अर्थ का है।
स्यात् निपात शब्द, वाक्यों में अर्थयोग से तव मत में।।103।।

1. केवलज्ञान, 2. शेष ज्ञानों का, 3. सभी ज्ञानों का।

स्याद्वाद का स्वरूप

त्यागी है एकांत-सर्वथा करे कथंचित्-वृत्ति स्यात्।
सप्त भंग नय से शोभित है और विशेषक हेय-रु त्याग।।104।।

स्याद्वाद और केवलज्ञान में भेद-निर्देश

सर्व तत्त्व[1] को करें प्रकाशित स्याद्वाद अरु केवलज्ञान।
अंतर मात्र परोक्ष और प्रत्यक्ष शेष अवस्तु ज्ञान।।105।।

नय हेतु का लक्षण

है सपक्ष संग अविरोधी साधर्म्य-साध्य का रहता संग।
स्याद्वाद द्वारा विषयी कृत अर्थ विशेष सुव्यंजक नय।।106।।

द्रव्य का स्वरूप और भेदों की सूचना

त्रैकालिक नय और उपनयों के एकांत सुविषयों का।
जो तादात्म्य समूह द्रव्य वह, एक-अनेक स्वरूप कहा।।107।।

निरपेक्ष और सापेक्ष नयों की स्थिति

मिथ्या एकान्तों का समूह मिथ्या है किन्तु न जिनमत में।
मिथ्या हैं निरपेक्ष सभी नय अर्थक्रियाकारी सापेक्ष।।108।।

वस्तु को विधि-वाक्यादि द्वारा नियमित किया जाता है

विधि-निषेध वाक्यों के द्वारा वस्तु-तत्त्व नियमित करते।
तथा-अन्यथा द्वारा विधि-निषेध, अन्यथा नहीं विशेष्य[1]।।109।।

तदतद्रूप वस्तु को तद्रूप ही कहने वाली वाणी सत्य नहीं

तत् अरु अतत्-रूप वस्तु, तत् रहे सर्वथा जो वाणी।
सत्य नहीं वह, मिथ्या कथनों से न देशना हो सकती।।110।।

1. वस्तु तत्त्व।

वाक्-स्वभाव-निर्देश, तद्भिन्न वाक्य अवस्तु

अन्य कथन प्रतिपाद्य अर्थ-प्रतिषेध हेतु जो अंकुश हीन।
स्वार्थकथन है वचन धर्म, अरु मात्र निषेधक व्योम कुसुम।।111।।

अभिप्रेत-विशेष की प्राप्ति का सच्चा साधन

सामान्य वाक्य यदि कहें विशेषों को, शब्दार्थ मृषा होते।
अभिप्रेत-अर्थ की प्राप्ति हेतु, बस स्यात्कार सत्-लांछन है।।112।।

स्याद्वाद-संस्थिति

वांछित-अर्थ क्रिया-कारण है जो विधेय अविरुद्ध विशेष।
हेय-ग्राह्य भी इसी भाँति है यह स्याद्वाद संस्थिति है।।113।।

आप्तमीमांसा का उद्देश्य

अहो! आप्तमीमांसा रचना हित-वांछक भविजन हेतु।
सत्-मिथ्या उपदेशों में अंतर दिखलाने रची गई।।114।।

*****

इस भव अरु पर-भव में जितने दुःखदायक हैं दोष कहे।
इस मनुष्य की मैथुन संज्ञा में वे ही सब दोष रहें।।

विषय वृक्ष से प्रजलित यह कामाग्नि जलाती है वन-त्रय।
यौवन तृण पर चले चतुर नर जले नहीं, है धन्य वही।।

विषय-उदधि में यौवन जल अरु लहरें उठती नारी-हास्य।
नारी मगरमच्छ से बचकर तरें उदधि जो वे नर धन्य।।

– भगवती आराधना, छन्द 889,1122-1123

आत्मानुशासन

(वीरछन्द)

मंगलचारण पूर्वक ग्रन्थ-रचना करने की प्रतिज्ञा

जो लक्ष्मी के निलयरूप उन अविनाशी प्रभु को उर धार।
ग्रन्थ रचूँ आत्माऽनुशासन, भव्य जनों को है शिवकार।।1।।

पापनाशक और सुखदायक उपदेश

हे आत्मन्! तू दुख से डरता अरु सुख की वांछा करता।
इसीलिए मैं दुखहारी अरु सुखकारी रचना करता।।2।।

कटु उपदेश से भी भयभीत न होने की प्रेरणा

मधुर-विपाकी उपदेशामृत यह यदि कटु भी भासित हो।
कटु-औषधि-ग्राहक रोगी बन किंचित् तू भयभीत न हो।।3।।

सच्चे उपदेशों की दुर्लभता

हुए व्यर्थ उद्धत जो जन-घन अति वाचाल सुलभ होते।
भीगे अन्तर वाले जग-हित-अभिलाषी दुर्लभ होते।।4।।

उपदेशदाता वक्ता का स्वरूप

धर्म-कथा कहने का अधिकारी हो प्रज्ञा-युत शास्त्रज्ञ।
हो प्रतिभासंपन्न, क्षीण-आशामय, लोक-स्थिति का विज्ञ।।

प्रशम, प्राग्दृष्टा प्रश्नों का, प्रश्न सहन करने वाला।
प्रभुतायुत, गुणनिधि, मृदुभाषी, सबका मन हरने वाला।।5।।

सत्पुरुषों के गुरु, सन्देह रहित आगम-ज्ञानी होते।
शुद्ध वृत्तिमय पर-प्रतिबोधी, मार्ग-प्रवर्तक भी होते।।

ज्ञानीजन की विनय युक्त हों, उद्धत-रहित तथा लोकज्ञ।
मृदुतायुत, वांछा-विहीन यति-पति गुण से होते समृद्ध।।6।।

सच्चे श्रोता का स्वरूप

धर्मकथा का श्रोता होता भव्य और निज-हित-चिन्तक।
दुक्खों से भयभीत तथा श्रवणादि बुद्धियुत हित-वांछक।।
सुखकर और दया-गुणमय, धर्मस्थ युक्ति अरु आगम से।
श्रुत-मर्यादा-धारी, आग्रह-मुक्त धर्म-वार्ता सुनते।।7।।

धर्माचरण की प्रेरणा

पापों से दुख और धर्म से सुख - यह जानें सब जग-जन।
अतः छोड़कर पाप, धर्म-आचरण करें सुख-वांछक जन।।8।।

आप्त की उपासना की प्रेरणा

सर्व कर्मक्षय से जो सम्भव वह सुख शीघ्र सभी चाहें।
कर्मक्षय सम्यक्-चारित से, चरित ज्ञान से अवगाहें।।
आगम श्रुति से, श्रुति आप्त से, आप्त रहित सब दोषों से।
अतः युक्ति से कर विचार सत्पुरुष सुखद जिन-शरण गहें।।9।।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप और भेद-प्रभेद

द्वयविध, त्रयविध, दशविध है, मूढ़ता-दोष विरहित श्रद्धान।
संवेगादि विवर्धित, भवहर, शुद्ध करे जो तीनों ज्ञान।।
नव वा सप्त तत्त्व निश्चायक, आराधना प्रथम यह जान।
अचल मोक्षपथगामी धीमत् शिष्यों को पहला सोपान।।10।।

सम्यक्त्व के आज्ञा आदि दस भेद

आज्ञा, मार्ग, सूत्र, उपदेश और संक्षेप, बीज-उत्पन्न।
अर्थज विस्तारज अवगाढ़ परम-अवगाढ़ कहा सम्यक्त्व।।11।।

आज्ञा, मार्ग और उपदेश सम्यक्त्व का स्वरूप

वीतराग की आज्ञा से जो रुचि हो वह आज्ञा-सम्यक्त्व।
मोह शान्ति से, ग्रन्थ-प्रपंच बिना जाने हो मार्ग-सम्यक्त्व।।
बाह्यान्तर परिग्रह-विहीन शिवपथ की श्रद्धा से होता।
उत्तम पुरुष पुराण श्रवण से समकित है उपदेश कहा।।12।।

सूत्र, बीज और संक्षेप सम्यक्त्व का स्वरूप

मुनि-आचरण प्ररूपक शास्त्र-श्रवण करने से सूत्र श्रद्धान।
दुर्गम अर्थ युक्त बीजों के ज्ञान मात्र से होता जान,
कहा बीज-सम्यक्त्व इसे यह हो दर्शन-मोहोपशम से।
है समकित संक्षेप, वस्तु का ज्ञान-मात्र संक्षेप लसे।।13।।

विस्तार, अर्थ, अवगाढ़ और परमावगाढ़ सम्यक्त्व का स्वरूप

द्वादशांग सुनकर रुचि होती कहें इसे समकित-विस्तार।
वचन बिना ही किसी अर्थ से हो वह श्रद्धा समकित-अर्थ[1]।।
द्वादशांग अरु अंगबाह्य के ज्ञान सहित जानो अवगाढ़।
केवलज्ञान सहित जो रुचि है जिनवर कहें परम-अवगाढ़।।14।।

सम्यग्दर्शन से ही मंद कषाय, शास्त्र ज्ञान, चारित्र और तप की पूज्यता

प्रशम ज्ञान चारित्र और तप, पाषाणों के भार समान।
किन्तु यदि सम्यक्त्व सहित हों तो हैं मणिवत् गौरववान।।15।।

सुकुमार (सरल) क्रिया करने का उपदेश

मिथ्यात्वरूप आतंकयुक्त है प्राप्ति-अप्राप्ति हिताहित-मूढ़।
तू बालकवत् अतः तुझे सुकुमार क्रिया कहता सुन मूढ़।।16।।

1. अर्थज सम्यक्त्व।

अणुव्रत ग्रहण करने की प्रेरणा

विषम विषय-भोजन से उत्थित मोहज्वरज अति तृष्णा ताप।
शक्तिहीन तेरा शीतल पेयों से मिट जाए संताप।।17।।

संसार के सभी प्राणियों को धर्म करने का उपदेश

तू जग में हो सुखी या दुखी, मात्र धर्म ही है कर्त्तव्य।
सुख की वृद्धि हेतु और दुख-नाश हेतु जानो हे भव्य!।।18।।

विषय-सुख भोगते हुए भी धर्म की रक्षा करने की प्रेरणा

धर्मरूप उपवन-तरु में विषयेन्द्रिय सुख ये फलें सभी।
सब उपाय से उसकी रक्षा करो और फल चुनो सभी।।19।।

धर्माचरण से सुख भंग होने के भय का निराकरण

सुख का कारण धर्म कहा, निज कार्य विराधे नहीं कभी।
इसीलिए सुख-भंग भीति कर, धर्म-विमुख होना न कभी।।20।।

कृषक के उदाहरण से धर्म रक्षा करने की प्रेरणा

जैसे बीज सुरक्षित रखकर, कृषक भोगता है धन-धान्य।
वैसे धर्म सुरक्षित रखकर, धर्मज-सुख भोगो सब जन।।21।।

धर्म का फल बिना माँगे ही

कल्पवृक्ष अरु चिन्तामणि संकल्पित चिन्तित फल देते।
किन्तु धर्म से बिन-संकल्प बिना-चिन्तन ही फल होते।।22।।

आत्मा के परिणामों से ही पुण्य और पाप की उत्पत्ति

पुण्य-पाप सब परिणामों से होता है कहते बुधजन।
अत: सुविधि से पाप-नाश अरु पुण्यार्जन करना सब जन।।23।।

धर्म संचय न करने वालों की निन्दा

धर्मघात करके जो मोही, अनुभव करें, विषय-सुख का।
मूल सहित छेदन कर तरु का, पापी ग्रहण करें फल का।।24।।

विषय-सुख भोगते हुए भी धर्मोपार्जन संभव है

कृत-कारित-अनुमोदन द्वारा अन्त:करण-वचन-तन से।
करने योग्य सर्वथा है फिर धर्म ग्राह्य नहिं हो कैसे?।।25।।

धर्म का फल

देखो! जिसके मन में रहता, भले प्रकार धर्म का वास।
अपने प्राण-हरण करनेवाले का भी न करे वह घात।।
किन्तु धर्म बिन पिता-पुत्र भी हरें परस्पर प्राणों को।
अत: धर्म ही सब जीवों का एकमात्र रक्षक जानो।।26।।

धर्म का घात करने से पाप होता है

पाप नहीं सुख-भोग मात्र से, धर्म-घात से होता पाप।
नहिं अजीर्ण मिष्टान्न-ग्रहण से, अतिभोजन से अपने आप।।27।।

शिकारादि कार्य प्रत्यक्ष दुख के कारण

यदि प्रत्यक्ष दुखों का घर अरु पापी जन का कार्य कलाप।
है शिकार भयदायक, उसमें सौख्य हेतु उत्साह अमाप।।
लोक-द्वय में श्रेय-भूत सुखयुत अरु धन धीमानों से -
सेवनीय जो धर्म-कार्य, क्यों उनमें नहिं उत्साह बसे।।28।।

शिकारादि में आसक्ति अत्यन्त निर्दयता

जो भयमूर्ति और अशरण निर्दोष देह-धन युक्त अहो!
तृणभक्षी हिरणी को हनते, औरों की क्या बात कहो?।।29।।

झूठ और चोरी के त्याग की प्रेरणा

दम्भ दीनता चुगली चोरी झूठ और हत्या छोड़ो।
धर्म अर्थ यश पुण्य और सुख उभय लोक में प्राप्त करो।।30।।

पुण्यशालियों को उपसर्ग भी दुखदायक नहीं

पुण्यवान को अतिशय तीव्र उपद्रव नहिं पीड़ित करता।
जग को ताप-प्रदायक रवि भी कमलों को विकसित करता।।31।।

पुण्योदय बिना पुरुषार्थ भी कार्यकारी नहीं

जहाँ वृहस्पति सेनानायक, वज्र शस्त्र, सुर सैनिक हैं।
स्वर्ग दुर्ग, ईश्वर का अनुग्रह, ऐरावत जिसका गज है।।
अद्भुत बलयुत सुरपति को असुरों ने किया पराजित है।
अत: सुनिश्चित दैव शरण, निष्फल पौरुष को धिक्-धिक् है।।32।।

हिंसादिक के त्यागी सत्पुरुष आज भी हैं

जैसे पर्वत मोह रहित हैं, फिर भी पृथ्वी के भरतार।
रत्नों से हैं भरे पयोनिधि, किन्तु उन्हें नहिं धन की चाह।।
रहें गगनवत् अस्पर्शी सब वस्तु करें उसमें विश्राम।
धर्म-सनातन पालनकर्ता सन्त आज भी बसें महान।।33।।

लौकिक जीवों की मूर्खता पूर्ण प्रवृत्ति

पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, ठगते होकर मोहाधीन।
अंश मात्र सुख भोग हेतु वे, चाहें राजमुकुट हो दीन।।
अहो! मूढ़जन यम की जन्म-मरण दाढ़ों में रहकर भ्रान्त।
नहीं देखते उस यम को जो तन हरने में रहे अश्रान्त।।34।।

विषयान्ध पुरुष की दुर्दशा का वर्णन

अन्धों में भी महा-अन्ध हैं, जो विषयों में अन्ध हुए।
अन्ध चक्षु से नहिं जाने, दूजे न एक भी इन्द्रिय से।।35।।

विषयाभिलाषा की व्यर्थता

जिसमें विश्व अणू सम लघु है प्रतिप्राणी का आशा-गर्त।
किसको कितना मिल सकता फिर विषयों की अभिलाषा व्यर्थ।।36।।

पुण्योपर्जन की प्रेरणा

पूर्व पुण्य से सहज प्राप्त हों, आयु लक्ष्मी सुन्दर तन।
पुण्योदय बिन मिलें नहीं कर लें जितने अति कष्ट सहन।।
कार्य-कुशल जो श्रेष्ठ पुरुष वे करके मन में यही विचार।
इस भव हेतु यत्न शिथिल कर, पर-भव का करते उद्धार।।37।।

विषयों का स्वाद अत्यन्त कटु

कटु विषसम विषयों में मिलता तुम्हें कौन-सा स्वाद कहो?
जिसे खोजने हेतु निजामृत को करते अपवित्र अहो।।
कष्ट! अहो विपरीत राग को मधुर मानते हो धीमान!
इन्द्रिय-मन के दास हुए हो पित्त-रोगयुत मनुज समान।।38।।

तृष्णा की विकरालता

विषय-प्रवृत्त तुम्हारे तृष्णा-मुख से जो कुछ बचा जगत।
जैसे शक्ति हीनता से रवि-शशि भखने में राहु अशक्त।।39।।

परिग्रह त्याग की प्रेरणा

पुण्योदय से राज्यादिक सुख भोगें यदि चिरकाल नरेश।
किन्तु उसे ही तजकर पाते अविनाशी मुक्ति सुख श्रेय।।

अत: परिग्रह-ग्रहण पूर्व ही भविजन उसका त्याग करो।
मोदक ग्रहण-त्याग करते भिक्षुकवत् नहिं हास्यास्पद हो।।40।।

गृहस्थाश्रम के त्याग की प्रेरणा

कभी जीव को करे धर्ममय कभी करे पापों से लिप्त।
धीमानों के जीवन में भी पुण्य-पापमय करे चरित्र।।
इसीलिए अन्धे का रस्सी बुनना है या गज-स्नान।
यह गृहस्थ-आश्रम है मत्तपुरुष के कार्य-कलाप समान।।41।।

गृहस्थाश्रम में होने वाले निरर्थक क्लेशों का वर्णन

कृषि करते या नृप-सेवा या वन-समुद्र में भटक रहे।
सुख के लिए मोह-वश होकर दीर्घ काल से कष्ट सहे।।
तेल खोजते रहे रेत में विष खाकर जीना चाहा।
आशा-ग्रह के निग्रह से ही सुख होगा यह नहिं जाना।।42।।

आशारूपी अग्नि से दग्ध व्यक्ति की चेष्टा

आशानल से दग्ध, वस्तु के सेवन से जन सुख चाहें।
ताप-निवारण हेतु बाँस की छाया निष्फल अवगाहें।।43।।

पुण्योदय के बिना कार्यसिद्धि नहीं

जल पाने के लिए मनुज ने कूप खोदना शुरू किया।
पर खारा जल अल्प उसे पाताल-लोक पर्यन्त मिला।।
वह भी अति दुर्गन्ध युक्त, कर्दम कीड़ों से था भरपूर।
सूख गया तत्काल अहो! विधि का विधान है कितना क्रूर।।44।।

न्यायोपार्जित धन से कभी सम्पदा नहीं बढ़ती

न्यायोपार्जित धन से भी सम्पदा न बढ़ती सुजनों की।
निर्मल जल से नहीं पूर्णता होती कभी नीर-निधि की।।45।।

धर्म, सुख, ज्ञान और गति का स्वरूप

जहाँ नहीं होता अधर्म वह धर्म, जहाँ दुख नहिं सुख है।
ज्ञान वहीं, अज्ञान जहाँ नहिं, आगति नहीं, जहाँ गति है।।46।।

धनोपार्जन छोड़कर धर्म-साधन की प्रेरणा

विषय लोलुपी निर्विचार तू धन के लिए करे जो क्लेश।
एक बार परलोक हेतु यदि करे, दुख का रहे न लेश।।47।।

बाह्य पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि के त्याग की प्रेरणा

इष्ट-अनिष्ट बुद्धि करता है, परद्रव्यों में बिना विचार।
वस्तु-स्वरूप बिना जाने, क्यों काल गँवाता बारम्बार।।
उदय-प्राप्त निर्दय अति भयप्रद ज्वालामय मुखवाला काल-
भस्म करे, उससे पहले ही, परम शान्ति पा ले तत्काल।।48।।

आशारूपी नदी के पार होने की प्रेरणा

पर की आशा-सरिता में बहकर आए अति दूर अहो।
नहीं जानते क्या तुममें ही तिरने की सामर्थ्य कहो?
हो स्वतन्त्र, तट पाओ! नहिं तो डूबोगे भव-सागर में।
कालरूप ग्रह-मुख से भयप्रद दुखमय अन्त अहो! जिसमें।।49।।

विषयाभिलाषा से व्याकुल जीव की चेष्टा

विषयी जन ने जिन्हें भोग कर कौतूहल तज छोड़ दिया।
पूर्व प्राप्त नहिं हुए मान कर तूने उनसे राग किया।।
पाप समूह सबल अरिदल ने विजय-ध्वजा जो फहराई।
नष्ट दुराशा किए बिना, हे भव्य! शान्ति किसने पाई।।50।।

आशा के वशीभूत जीव का अविवेक

अज्ञानी पर-भव में दुर्लभ, सर्प समान प्राण-हर्ता।
भोग हेत निर्भय हो मरकर भी पर-वध इच्छा करता।।

साधुजनों से निंद्य कार्य-इच्छुक कामुक हतमति धिक्कार।
काम-क्रोध महाग्रह पीड़ित दुर्जन करे न क्या-क्या कार्य।।51।।

जगत की क्षणभंगुरता

जिसका होने वाला कल है उसका होता बीता काल।
काल-पवन से मूलविहीन जगत् में कुछ भी नहीं त्रिकाल।।
हे भाई! भ्रम तज, अपनी आँखों से देखो भली प्रकार।
क्यों भ्रमते हो नश्वर विषयों की इच्छा कर बारम्बार।।52।।

वर्तमान दुखों का वर्णन

नरकादिक के दुखों का संस्मरण मात्र ही अति दुखकार।
दूर रहे उनकी चर्चा नरभव के दुख को करो विचार।
हे निर्धन! तू काम-शस्त्र सम मन्द हास्ययुत कामिनी के।
तीक्ष्ण कटाक्षों से बिंध कर हिमदग्ध बाल-तरु सम दहके।।53।।

आत्मकल्याण की प्रेरणा

दोष धातु मल आधि व्याधियुत तन में तू उत्पन्न हुआ।
आत्म-प्रवंचक दुष्चरित्र तू क्रोधादिक से लिप्त हुआ।।
मरणोन्मुख, अरु ग्रास जरा का, वृथा जन्म ले मत्त हुआ।
अरे अवांछक निज-हित का, क्यों विषयेच्छा से बद्ध हुआ।।54।।

उग्र ग्रीष्म की सूर्य-किरण से उपजे अति संताप समान।
पंचेन्द्रिय से तप्त हुआ है वृद्धिंगत अति तृष्णावान।।
इष्ट प्राप्ति से रहित और अविवेकी करता पापाचार।
अरे तृषातुर! कर्दम-लिप्त वृषभवत् सहता कष्ट अपार।।55।।

तृष्णा से उत्पन्न दुख का वर्णन

अग्नि प्रज्वलित होती-बुझती ईंधन का हो योग-वियोग।
किन्तु तीव्र मोहाग्नि सदा जलती, चाहे संयोग वियोग।।56।।

मोह-निद्रा का वर्णन

भय-प्रद पापरूप मुन्दर[1] क्या करे न तेरा मर्मच्छेद?
दुखमय अग्निज्वाल क्या नहिं दहती अनादि से तेरी देह।।
गर्जनरत यम के वाद्यों के शब्द भयंकर क्या न सुने?
जिससे मोहजन्य निद्रा अज्ञानी फिर क्यों नहीं तजे।।57।।

मोह-निद्रा के वश हुए प्राणी की दिशा

सदा पाप-फल दुखमय भोगे धरता है तन से सम्बन्ध।
पल-पल वह व्यापार करे जिससे हो कर्मप्रकृति का बन्ध।।
निद्रा ही विश्राम, मृत्यु निश्चित है फिर भी भय करता।
अति आश्चर्य कि हे प्राणी! तू ऐसे जग में ही रमता।।58।।

शरीर की बन्दीगृह से तुलना

अस्थिरूप पाषाण विनिर्मित सिरा स्नायु से बँधा हुआ।
चर्माच्छादित सजल रुधिर से और मांस से लिप्त सदा।।
कर्म-शत्रु से रक्षित, आयु साँकल से बँधा शरीर निवास।
अरे मूढ़! यह बन्दीगृह, तू मत करना इससे अनुराग।।59।।

घर-कुटुम्ब आदि का स्वरूप

शरणभूत घर अशरण है, ये बन्धु बन्ध के मूल सदा।
चिर-परिचित दारा को जानो आपद्घर का द्वार सदा।।
पुत्र शत्रु है और दुख का कारण है सारा परिवार।।
इन्हें छोड़कर निर्मल धर्म भजो चाहो यदि सुखमय सार।।60।।

समभाव धारण करने की प्रेरणा

आशानल को ईंधन-सम उद्दीपन-कारक धन से क्या?
कहो प्रयोजन पापमूल सम्बन्धी बन्धु जनों से क्या?

1. मधुमक्खी।

कहो प्रयोजन महामोह अहि-बिल सम तन अथवा प्रासाद।
सौख्य हेतु समभाव प्राप्त कर हे प्राणी! मत करो प्रमाद।।61।।

लक्ष्मी की अस्थिरता

पट्ट-बन्ध द्वारा पहले ही महाबली जिसकी रक्षा।
करते हैं, असियुक्त भुजाओं से सामन्त करे रक्षा।।
दीप-शिखा सम चंचल लक्ष्मी नृप की भी विलीन होती।
ढुरते चँवर पवन से पीड़ित आशा क्या साधारण की।।62।।

शरीर की नश्वरता

जलते हुए उभय दिशि में एरंड काष्ठगत कीट समान।
जन्म-मृत्यु से व्याप्त देह में दुख भोगता यह अनजान।।63।।

विषयों के त्याग की प्रेरणा

इन्द्रिय-मन से प्रेरित होता विषय-ग्रहण में व्याकुल हो।
अरे! दुराचरणों के द्वारा पाप बढ़ाता आकुल हो।।
मन-इन्द्रिय को दास बनाकर राग-रहित हो विषय तजो।
सदाचरण से पाप रहित हो सुख अनुभव कर मुक्ति भजो।।64।।

परिग्रह रहित यति ही महा सुखी

निर्धन जन धन-बिना दुखी अरु तृष्णा से दुखमय धनवान।
सभी भोगते कष्ट, मात्र मुनिराज भोगते सुख की खान।।65।।

पराधीन सुख से भी अतिशय श्रेष्ठ दुख स्वाधीन कहो।
यदि ऐसा नहिं होय तपस्वी मुनिजन कैसे सुखी कहो।।66।।

मुनियों के गुणों की प्रशंसा

हो स्वतन्त्र करते विहार अरु दीनभाव से रहित अशन।
मुनिजन के संग वास करें अरु स्वाध्याय श्रम फल उपशम।।

निज-स्वरूप से कभी बहिर्मुख होते तब भी मन्द प्रवृत्ति।
नहिं जानें हम मुनिवर की यह किस उदार तप की परिणति।।67।।

श्रुत-चिन्तन अरु जीवों की उत्कृष्ट दया, वैराग्य महान।
तम-एकान्त प्रपंच नाश करती जिनकी मति सूर्य समान।
अन्त समय शास्त्रोक्त विधि से अनशन पूर्वक तजते देह।
है महान तप-फल यह परिणति अल्प तपों से नहीं विधेय।।68।।

शरीर का विनाश निश्चित

स्वत: अन्यत: कोटि उपायों से भी रक्षित नहिं यह देह।
पतनोन्मुख ही रहे सर्वथा इससे क्यों आग्रहमय स्नेह।।69।।

अत: सुनिश्चित विनाशीक यह देह और आयु को तज।
शाश्वत पद यदि मिलता है तो अनायास मिल गया समझ।।70।।

आयु की क्षणभंगुरता

आती जाती श्वासों द्वारा करे निरन्तर गमनाभ्यास।
किन्तु इन्हीं में अज्ञानी जन करते अजर-अमर अध्यास।।71।।

अरहट की घटिका थित जलसम होती आयु निरंतर क्षीण।
आयु का अनुगामी होकर कृश होता यह दुष्ट शरीर।।
आयु देह दोनों क्षणभंगुर अन्य सभी को नश्वर जान।
अज्ञानी इनको थिर माने नौका तिष्ठित मनुज समान।।72।।

श्वास की उत्पत्ति में ही दुख

खेदजन्य उच्छ्वास अत: इस जीवन को दुखमय जानो।
श्वास बिना मरता प्राणी, फिर इनमें कैसे सुख मानो।।73।।

संसार में जीवन बहुत थोड़ा

जन्मरूप इस ताल-वृक्ष से गिरते फल सम प्राणी जान।
मृत्यु-भूमि की प्राप्ति पूर्व रह सकते किंचित् काल प्रमाण।।74।।

अनेक प्रयत्नों के बाद भी मनुष्यों की रक्षा संभव नहीं

संख्यातीत समुद्र-द्वीप के मध्य मनुज विधि ने थापे।
बाहर वातवलय से घेरे नीचे असुरकुमार रखे।।
ऊपर वैमानिक देवों को रख कर भी नर नहीं बचे।
इन्द्र विधाता चक्रवर्ती भी कोई काल न लाँघ सके।।75।।

काल से अधिक बलवान कोई नहीं

दुष्ट राहु का ठौर ज्ञात नहिं देह-रहित अरु पाप-मलीन।
सहस्र किरणरूपी कर से दिनकर व्यापक है सुभुवन तीन।।
अहा! खेद है यह रवि, राहु द्वारा ग्रसित किया जाता।
काल प्राप्त होने पर विधि से कौन सुभट रक्षा करता।।76।।

काल द्वारा प्राणियों को मारने की विधि

पूर्वोपार्जित कर्म जगत को अति निर्दय ठग-सम ठगते।
तीन भुवन को महामोह मद उपजा कर गाफिल करते।।
इस संसार भयानक वन में जीवों का करते हैं घात।
इनका करे निवारण जग में किसमें है ऐसा सामर्थ्य।।77।।

यमराज का आकस्मिक आगमन

काल कहाँ से कब कैसे किस पर आता यह नहिं जानो।
फिर कैसे निश्चिन्त हुए? कल्याण हेतु अब यत्न करो।।78।।

मरण से रहित कोई नहीं

किसी देश अरु काल विधान तथा कारण को यदि देखो।
मृत्यु से सम्बन्ध रहित, तब प्राणी तुम निश्चिन्त रहो।।79।।

स्त्री शरीर से प्रीति छोड़ने की प्रेरणा

यह सुन्दर नारी तन नरकादिक के महादुख का द्वार।
यह तो तेरा हितनाशक है तू करता इसका उपकार।।
पुण्य भस्म करने हेतु यह अग्नि ज्वाल के पुंज समान।
अत: प्रीति छोड़ो इससे, क्यों करो प्रीति यह दुर्लभ जान।।80।।

मनुष्य पर्याय की काने गन्ने से तुलना

विपदामय गाँठों से तन्मय नीरस जिसका अन्तिम भाग।।
नहीं भोगने योग्य मूल भी विविध रोग से ग्रस्त असार।।
घुने हुए इक्षु सदृश तन नाम मात्र से है रमणीय।
परभव का यह बीज बनाकर सारभूत यह तन करणीय।।81।।

आयु की अनिश्चितता

निद्रा में मृत की आशंका जागृति में जीवन-उत्सव।
नित्य मनाता है यह प्राणी कब तक थिर होगा नरभव।।82।।

कुटुम्बीजन हितकारी नहीं

बन्धु जनों ने करने योग्य किया क्या हित यह सत्य कहो?
मरण बाद इस तन-शत्रु को, मात्र करें वे भस्म अहो।।83।।

विवाहादि में सहायक बन्धुजन ही वास्तविक शत्रु

विवाहादि संसार-विधायक कार्य स्व-जन जो करते हैं।
वे ही शत्रु, अन्य नहीं, इक बार प्राण जो हरते हैं।।84।।

तृष्णारूपी अग्नि में जलने पर शान्ति की भ्रान्ति

आशानल में धन-ईंधन क्षेपण करता है होकर भ्रान्त।
उस अग्नि को ज्वलन काल में प्राणी माने भ्रमवश शान्त।।85।।

बाल सफेद होने का यथार्थ आशय

बुद्धि की निर्मलता जाती मानो धवल केश के द्वार।
अत: बिचारे वृद्ध पुरुष कैसे पर-भव का करें विचार।।86।।

संसार-समुद्र का स्वरूप

इष्ट-विषय-सेवन-सुखरूपी खारे जल से भरा हुआ।
अन्तर में नाना मानस दुख बड़वानल से तप्त हुआ।।
जन्म-मृत्यु अरु जरा तरंगें उछलें जिस भव-सागर में।
मुँह फाड़े इस मोह-मच्छ से दूर प्रवर्तक दुर्लभ हैं।।87।।

ज्ञान-ज्योतिवन्त जीव धन्य हैं

अहो! निरन्तर सुख-सामग्री सेवन करती रमणी के।
चंचल एवं अति रमणीय मनोहर कमल-नयन दल से।।
यौवन में अर्चित तन तेरा, धन्य! जगी जब ज्ञान-ज्योति।
हिरणी तुझको देखे वन में होती थलकमलिनी[1] की भ्रान्ति।।88।।

बाल्यादि तीनों अवस्थाओं में धर्म की दुर्लभता

पूर्ण अंग बिन बाल्यकाल में जाने नहीं हिताहित क्या?
यौवन में कामान्ध, कामिनी-द्रुम से सघन विपिन भ्रमता।।
मध्यकाल में तृष्णावश कृषि आदि क्लेश होते पशु-तुल्य।
अर्धमृतक वृद्धावस्था, कब करे धर्म से जन्म सफल?।।89।।

बाल्यादि तीनों अवस्थाओं में कर्म जनित दुख

विधि ने बाल्यकाल में तेरा अहित किया जो विस्मरणीय।
मध्यकाल नहिं दिए कौन दुख धन-अर्जन में नहिं सहनीय।।
दन्त-दलन आदि चेष्टा से किया बुढ़ापे में अपमान।
फिर भी विधि के वश में हो चलना चाहे तू दुर्मतिमान।।90।।

1. भूमि पर होनेवाली कमलिनी।

वृद्धावस्था से आत्महित की प्रेरणा

तिरस्कारमय वचन न सुनना पड़ें अत: बहरे हैं कान।
निंद्य दशा नहिं देख सकें इसलिए नेत्र में अन्धापन।।
यम को सन्मुख लख कर भय से कम्पन होता है तन में।
निश्चल है तू जलते घर-सम जीर्ण जरामय इस तन में।।91।।

विषयी जीवों को युक्तिपूर्वक उपालम्भ

अति परिचित में होय अवज्ञा नूतन में होती है प्रीति।
गुण में अरति दोष में रति कर, क्यों झूठी करता जग-रीति।।92।।

व्यसनी को हिताहित का अभाव

हंसों द्वारा भुक्त नहीं होता जल से अलिप्त रहता।
अत: कठोर कमल जो केवल दिवस-काल में ही खिलता।।
यह विचार नहिं करें, गन्ध में मुग्ध-भ्रमर करते प्राणान्त।
कहाँ हिताहित का विवेक? जो व्यसनों में होते हैं भ्रान्त।।93।।

बुद्धिमानों का प्रमादी होना शोचनीय

सद्बुद्धि होना दुर्लभ है, अति दुर्लभ विचार परलोक।
बुद्धि प्राप्त कर रहें प्रमादी, अत: ज्ञानियों को है सोच।।94।।

ज्ञानियों का राजादिक का दास होना विचारणीय

जिससे हुए लोकपति राजा जन-प्रसिद्ध वह धर्म-विधान।
सोचनीय! सक्षम होकर भी ज्ञानी नृप के किंकर जान।।95।।

धर्म प्राप्ति का विधान

महावंश का धारक भूभृत जिसका वह उत्कृष्ट प्रदेश।
मात्र बुद्धि से अन्त ज्ञात हो उन्नत शिखरों सहित नगेश।।

सर्पों द्वारा दुर्गम एवं दिशा-शून्य है विस्तृत मार्ग।
महापुरुष कह सके नहीं सर्वार्य[1] किया है साक्षात्कार।।96।।

यतियों का पर-हित के प्रति अनुराग

सर्व दुखों की जनक सर्वथा अशुचि देह में रहकर भी।
नहिं विरक्त होता है प्राणी करे प्रीति दुख सहकर भी।।
ऐसी दशा देख कर यतिगण हमें जगाते हैं वैराग।
इस तन से अब हो विरक्त! देखो इनका पर-हित अनुराग।।97।।

शरीर समस्त आपदाओं का स्थान

यह शरीर ऐसा वैसा है बहुत कथन में क्या है सार।
तूने बार-बार भोगा सब दुख का घर यह समझो सार।।98।।

गर्भावस्था के दुख

भक्षित अन्न हेतु मुँह फाड़े खुधा-तृषा पीड़ित हो दीन?
बढ़ने की आकांक्षा से हो मात-गर्भ में कर्माधीन।।
कृमि-समूह सह जन्म-क्लेश से डरकर रहता है निस्पन्द।
मरण जन्म का कारण अत: मरण-भय से होता आक्रान्त।।99।।

अज्ञानी की मूर्खता

प्राणी तूने किया आज तक अजा-कृपाणीय[2] सम कार्य।
सुख सामगी मिले यहाँ जो अन्धक-वर्तकीय सम न्याय।।100।।

कामजन्य वेदना

अहो कष्ट है! पण्डितमानी जन को भी यह काम-प्रचण्ड।
सुन्दर नारी द्वारा खण्डित करता असमय देता दण्ड।।

1. सर्वार्य नामक मंत्री अथवा समस्त आर्य पुरुषों द्वारा पूज्य सर्वज्ञदेव,
2. बकरे द्वारा भूमि खोदकर कृपाण निकालने की मूर्खता।

अति आश्चर्य कि इस पीड़ा को करें सहन वे होकर धीर।
किन्तु नहीं उत्साह तपाग्नि द्वारा भस्म करें हो वीर।।101।।

उत्तरोत्तर उत्कृष्ट त्याग के उदाहरण

तृण-सम तुच्छ जानकर लक्ष्मी कोई ज्ञानी देते दान।
असन्तोष अरु पाप मूल लख बिना दिए तजते धीमान।।
कोई महाविवेकी जन ग्रहते ही नहीं अहितकर जान।
त्यागी जानें त्याग इसे उत्कृष्ट एक से एक महान।।102।।

विरक्ति होने पर सम्पत्ति के त्याग में क्या आश्चर्य?

इसमें क्या आश्चर्य कोइ नर हो विरक्त संपति तजते।
ग्लानि भाव होने पर भक्षित भोजन जन क्या नहिं वमते।।103।।

लक्ष्मी का त्याग होने पर विभिन्न परिणाम वाले त्यागी

लक्ष्मी तजकर मूढ़ शोक करते अरु पराक्रमी अभिमान।
है विचित्र! तत्त्वज्ञ पुरुष नहिं करें शोक अथवा अभिमान।।104।।

शरीर से मोह-त्याग की प्रेरणा

गर्भकाल से मरण समय तक जो भी शारीरिक आचार।
वृथा क्लेशमय, अशुचिभावमय भय-उत्पादक तिरस्कार।।
इसको तजने से मिलती है मोक्ष-लक्ष्मी कर निरधार।
कौन करे नहिं खलसंगतिवत् इसे त्यागने का सुविचार।।105।।

रागादि छोड़ने की प्रेरणा

जन्मादिक फल पाये हैं कुज्ञान-राग से बारम्बार।
अब विपरीत प्रवर्तन करके, अजर-अमर फल पा शिवकार।।106।।

दया-दम आदि के मार्ग पर चलने की प्रेरणा

दया-दम-त्याग समाधि मार्ग में यत्नशील हो करो प्रयाण।
इससे पाओगे तुम वचन-विकल्प अगोचर पद निर्वाण।।107।।

भेद-ज्ञान और वीतरागता की प्रेरणा

भेद-ज्ञान से मोह नष्ट करके यदि करो परिग्रह त्याग।
कुटी-प्रवेश[1] द्वारा निर्मल तन-सम हो अजर अमर क्षतराग[2]।।108।।

बाल-ब्रह्चारियों की प्रशंसा

भोगों को तजने से, जिनका है उच्छिष्ट[3] सकल संसार।
ब्रह्मचर्यधारी कुमार को अचरज सहित नमन बहु बार।।109।।

परमात्मा बनने का रहस्य

मैं हूँ सदा अकिंचन - इस अनुभव से हो पति त्रिभुवन का।
यह रहस्य तुझको कहते हम, योगिगम्य परमातम का।।110।।

तप करने की प्रेरणा

यह भव दुर्लभ अशुचि दुखद परमायु-अल्प[4] नहिं जिसका ज्ञान।
अज्ञातमरण, तप इसमें हो, तप करो मुक्ति का कारण जान।।111।।

ध्यान तप का ध्येय और फल

त्रिभुवन गुरु परमातम हैं आराध्य यही सज्जन को मान्य।
चरण-स्मृति ही मात्र कष्ट है, कर्म नष्ट इतना व्यय जान।।
साध्यसिद्धि सुख होता अल्प समय में ही निज मन के द्वार[5]।
क्या समाधि में कष्ट? अहो ज्ञानी! निज मन में करो विचार।।112।।

तप ही समस्त सिद्धियों का साधन है

तृष्णारूप पवन से प्रेरित को वह सुख क्या मिल सकता?
और दुष्ट यह काम-व्याध आतम को दुष्ट बना सकता?
अरे पराभव! क्या चरणों को छू सकता यह तुम्हीं कहो?
तप से अधिक श्रेष्ठ साधन क्या अर्थसिद्धि का तुम्हीं कहो।।113।।

---

1. भूमिगत होकर वायु की कुम्भक क्रिया करना, 2. वीतराग, 3. जूठन, 4. उत्कृष्ट आयु भी अल्प है, 5. मन के द्वारा।

तप की महिमा

तप के द्वारा क्रोधादिक रिपु सहजभाव से होंय परास्त।
प्राण-त्याग करके भी जिनको चाहें वे गुण होते प्राप्त।।
मोक्षरूप पुरुषार्थ-सिद्धि भी हो जाएगी पल भर में।
ताप-शमनकर्ता इस तप में ज्ञानी-जन क्यों नहीं रमें?।।114।।

समाधि में ध्यान को सुरक्षित रखने की प्रेरणा

कच्चे फल के अग्र भाग से जैसे होता नष्ट सुमन।
तपोबेलि पर पुण्यरूप फल देकर खिरता जिसका तन।।
धन्य! अग्नि से दुग्ध सुरक्षित करने वाले नीर समान।
ध्यान सुरक्षित रखे समाधि-अनल में शोषित आयु जान।।115।।

तप करने में ज्ञान की महिमा

जो वैराग्यारूढ़ हुए अरु तन का पालन करते हैं।
महिमा यही ज्ञान की वे चिरकाल तपस्या करते हैं।।116।।

इस शरीर के साथ आधे क्षण भी रहना सह्य नहीं

कौन विवेकी रह सकता आधे क्षण भी इस तन के साथ।
अगर रोकने वाला ज्ञान पकड़ लेता नहिं उसका हाथ।।117।।

परीषह सहने की प्रेरणा

तृण समान गिन राज्य-लक्ष्मी तज कर आदिनाथ भगवान।
तप करते, निर्मान, क्षुधित हो पर-घर भ्रमते दीन समान।।
नहीं मिला आहार उन्हें निर्-अन्तराय बीता बहु काल।
अत: परीषह क्यों न सहें साधारण-जन निज कार्यवशात्।।118।।

विधि का विलास अलंघ्य है

गर्भ-पूर्व सुरपति कर जोड़े जिनके सन्मुख दास समान।
सृष्टि के सृष्टा, जिनके सुत चक्रवर्ती हैं निधि-पति जान।।

हुए क्षुधा से व्याकुल भ्रमते पृथ्वी पर वे प्रभु छह मास।
अहो! कोइ भी लाँघ सके नहिं इस जग में यह विधि-विलास।।119।।

संयमधारियों की महिमा

संयमधारी पहले होते दीप समान प्रकाश प्रधान।
फिर प्रकाश अरु ताप उभय से दीप्तित होते सूर्य समान।।120।।

ज्ञानियों की दीपक से तुलना

दीपक सम हो ज्ञानी, ज्ञान-चरित से भास्वर होते हैं।
कर्मरूप काजल को वमते स्व-पर प्रकाशक होते हैं।।121।।

अशुभ और शुभ छोड़ने का क्रम

अशुभ छोड़कर शुभ को पाकर होता शुद्ध जिनागम से।
अन्धकार नहिं प्रकट करे रवि सान्ध्य-लालिमा बिन जैसे।।122।।

ज्ञानियों का तप और श्रुत के प्रति अनुराग कल्याणकारी है

मोह-विनाशक ज्ञानी को जो तप-श्रुत सम्बन्धी अनुराग-
होता है, कल्याण प्रयोजक यथा लालिमा सूर्य-प्रभात।।123।।

अशुभ राग में दोष की अधिकता

ज्ञानज्योति तज, तम अपनाकर रागादिक परिणति को प्राप्त।
राग युक्त रविवत् वह तल पाताल लोक का करता प्राप्त।।124।।

मोक्षमार्ग की यात्रा

ज्ञान अग्रसर, लज्जा मित्र, जहाँ तप है पाथेय समान।
चारित शिविका, स्वर्ग निवेशन गुणरक्षक से युक्त विमान।।
सरल, शान्ति-जल युक्त मार्ग है दया-भावना छाया जान।
मुनि को विघ्न रहित पहुँचाती यह यात्रा गन्तव्य स्थान।।125।।

स्त्रियों का महाविषमय स्वरूप

अज्ञानी दृष्टि-विष कहते सर्पों को यह किन्तु असत्य।
जो निज नेत्र-कटाक्ष मात्र से करें सर्वथा जग संतप्त।।
उन्हें छोड़ विपरीत हुआ तू अतः क्रुद्ध हो वे भ्रमती।
उनका विषय नहीं बनना केवल विषरूप समझ स्त्री।।126।।

स्त्रीरूपी सर्प के विष की औषधि नहीं

क्रोधित होने पर ही डसकर प्राण हरे यह सर्प कभी।
उनका विष हरने वाली औषधि मिलती है आज सभी।।
नारी-सर्प सदा डसता है हो प्रसन्न या क्रोधित भी।
योगी उसको देखें या वह देखे इस-भव पर-भव भी।।127।।

मुक्ति-स्त्री से ही अनुराग की प्रेरणा

यह उत्तम नायिका जगत्-प्रिय मिले न साधारण जन को।
मुक्ति-श्री ललना गुण-ग्राहक यदि पाना चाहो इसको।।
रत्नत्रय से करो विभूषित पर-स्त्री की करो न बात।
ईर्ष्यायुत महिला होती हैं अतः इसी से कर अनुराग।।128।।

नारी को सरोवर की उपमा

स्वच्छ हास्यमय वचन सलिलयुत सुखदा चंचल लहर समान।
वदन-कमल से बाह्य रम्य है नारी सरोवरी सम जान।।
बहुत जीव तृष्णातुर हो, तट सरोवरी के हैं जाते।
विषय-ग्राह से ग्रस्त हुए अज्ञानी निकल नहीं पाते।।129।।

नारी, काम द्वारा निर्मित घातस्थल है

क्रूर पापरत, भयप्रद, इन्द्रिय-व्याध मृगस्थल के चहुँ ओर।
त्रस्त करें रागानल द्वारा इन्द्रिय-लुब्ध जनों को घोर।।
शरण खोजते जन-मृग दौड़ें काम-व्याध नृप से निर्मित।
नारीमय जो छद्मरूप घात-स्थल पायें हो पीड़ित।।130।।

नारी के प्रति आसक्ति में निर्लज्जता

तपरूपी अग्नि द्वारा जो हुआ घृणास्पद अरु भयप्रद।
अर्धदग्ध शव सम तन तेरा! क्यों न देखता रे निर्लज्ज!
तुझे देखकर भय से व्याकुल होकर सदा भागतीं दूर।
है स्वभाव से कायर नारी, फिर क्यों राग करे भरपूर।।131।।

काम-सेवन में खेद

उन्नत और निकटवर्ती कुचरूप अचल से जो दुर्गम।
उदर-स्थित त्रिवली सरिता से पार प्राप्ति अत्यन्त विषम।।
रोमपंक्ति पथ भटक भटक कर भी पहुँचे यदि काम-विमूढ़।
कान्ता का कटि-छिद्र प्राप्त कर कौन खिन्न होता नहिं मूढ़।।132।।

स्त्री की योनि का वीभत्स रूप

कामी का मलक्षेपण थल, कामायुध का नाड़ी-व्रण[1] जान।
दुर्गम मोक्षरूप पर्वत का आच्छादित गड्ढे-सम मान।।
कामरूप इस महासर्प के रहने का यह है स्थान।
बुधजन कहते सुन्दर दन्तवती नारी का जघन स्थान।।133।।

विषय-सुख का पोषण करने वाले ठग

तप हेतु विपिन जाकर भी जन नारी-कटि-कोटर में गिरते।
विषयों से आकर्षित गज ज्यों छल-कृत गड्ढे में पड़ते।।
पूर्व जन्म की जन्म-भूमि को प्रीतिंकर जो कहते हैं।
दुष्ट वचन द्वारा वे वंचक सारे जग को ठगते हैं।।134।।

नारी विष से भी अधिक भयानक है

कालकूट कण्ठस्थ हुआ पर जिसका कुछ भी कर न सका।
विषमरूप विष नारी द्वारा वह शिव भी अति दहक रहा।।135।।

1. नसों पर होने वाला घाव।

स्त्रियों को चन्द्रमा की उपमा देना उचित नहीं

सर्व-दोष के घर इस नारी तन में यदि तुझको अनुराग।
चन्द्र आदि सम सुन्दरता लख तुझको होता है अति राग।।
तब तो शुचि शुभ इन पदार्थ से करना है अति प्रीति भला।
किन्तु मदन-मधु से मदान्ध को होती यह न विवेक कला।।136।।

मन की नपुंसकता

प्रिया-भोग में आकुल है पर कायर भोग नहीं सकता।
किन्तु भोगती हुई इन्द्रियों को लख आनन्दित होता।।
अत: नपुंसक कहा शब्द से और अर्थ से भी यह मन।
शब्द-अर्थ से हुए पुरुष को कैसे जीत सकेगा मन।।137।।

तप की श्रेष्ठता

सौजन्य युक्त साम्राज्य, ज्ञानयुत तप, दोनों ही श्रेष्ठ कहे।
राज्य त्याग तप ग्राहक उत्तम, निम्न राज्य हित तप छोड़े।।
अत: राज्य से श्रेष्ठ तपस्या ज्ञानी मन में करें विचार।
धारण करते पाप-भीरु हो, उत्तम तप नाशक संसार।।138।।

गुण-हीनता से हानि होती है

जिन पुष्पों को पूर्व काल में सुरगण भी निज-शीष धरें।
फिर पैरों से भी नहिं छूते, गुण-क्षति क्या क्या नहीं करे।।139।।

दोष का अंश भी निन्द्य है

चन्द्र! दोषयुत यदि होना था दोषरूप क्यों नहीं हुआ।
शेष ज्योति मल को दिखलाती राहु दृष्टिगोचर न हुआ।।140।।

दोष बताने वाले दुर्जन भी हितकारी हैं

दोष-प्रवर्तन इच्छा से यदि शिष्य-दोष को गुरु ढकता।
दोष सहित हो मरण शिष्य का तो फिर गुरु क्या कर सकता।।

अत: हमारा नहीं हितैषी दोष ढाँकने वाला गुरु।
अल्प दोष को अतिशय कहने वाला दुर्लभ सच्चा गुरु।।141।।

गुरु के कठोर वचन भी हितकारी हैं

हो कठोर गुरु-वाणी, पर भव्यों का मन विकसित करती।
जैसे सूर्य-किरण कठोर भी कमल-कली विकसित करती।।142।।

धर्मात्माओं की दुर्लभता

पूर्व सुलभ, अब दुर्लभ, वक्ता-श्रोता उभय-लोक हितकार।
किन्तु पूर्व अरु अब भी दुर्लभ, जो पालें निर्मल आचार।।143।।

विवेकी जन प्रशंसा में सन्तुष्ट नहीं होते

गुण अरु दोष विवेकवान यदि अल्प दोष अतिशय कहते।
बुद्धिमान जन सदुपदेशवत् इसमें अति प्रीति करते।।
किन्तु धृष्टतावश अविवेकी करें प्रशंसा तो धीमान्।
तुष्ट नहीं होते हैं इसें, उन्हें कष्ट-प्रद यह अज्ञान।।144।।

ज्ञानियों मे श्रेष्ठ कौन

गुण-दोषों के कारण से ही, अन्य कारणों से निरपेक्ष।
करते हैं जो ग्रहण-त्याग वे ही हैं ज्ञानी-जन में श्रेष्ठ।।145।।

अहित का त्याग और हित में प्रवर्तन करने की प्रेरणा

हित को छोड़, अहित में स्थिति करके दुखी हुआ दुर्बुद्धि।
हो सुबुद्धि, इससे विपरीत प्रवर्तन करके परम सुखी।।146।।

गुणों का ग्रहण और दोषों के त्याग की प्रेरणा

यही दोष हैं अरु यह इनकी उत्पत्ति का कारण है।
यह सद्गुण हैं अरु यह इनकी उत्पत्ति का कारण है।।

यह विचार, जो त्याज्य-हेतु[1] को तजे, शीघ्र हित-हेतु [2]भजे।
सच्चरित्र विद्वान वही वह ही सुख-यश-निधि का घर है।।147।।

विवेकियों का कर्तव्य

सब जीवों में वृद्धि-नाश[3] का कारण होता एक समान।
जन्मान्तर में अर्जित शुभ अरु अशुभ कर्म का उदय प्रधान।।
बुद्धिमान वह जिसकी बुद्धि और विनाश सुगति-साधन।
वह विमूढ़ है जिसकी वृद्धि-विनाश होय दुर्गति-साधन।।148।।

यथार्थ चारित्र पालने वाले मुनि विरले ही हैं!

कलि[4] में नीति, जगत में नरपति करते निश्चित दंड-विधान।
किन्तु उसे धन स्रोत बनाते, धन विहीन है आश्रमवान[5]।।
निज-वन्दन-अनुरक्त गुरु सन्मार्ग दिखाने में असमर्थ।
साधुचरित आचरक शिष्य हैं मणि समान अतएव विरल।।149।।

स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने वालों की संगति का निषेध

मुनि-मानी जो हुए कामिनी के कटाक्ष अवलोकन ग्रास।
शर से घायल हुए हिरणवत् इधर-उधर भ्रमते संत्रास।।
विषय-वनस्थल में जो निज को थिर रखने में हैं असमर्थ।
वायु प्रताड़ित मेघ समान, करो न कभी इनका संसर्ग।।150।।

अयाचक वृत्ति धारण करने की प्रेरणा

गुफा मात्र ही तेरा घर, तू दिशा रूप परिधान पहन।
तप की वृद्धि इष्ट भोजन है, नभ ही है तेरा वाहन।।
हे आगम को प्राप्त यती! गुणगण ही तेरे हुए कलत्र।
अत: अयाचक वृत्तिवान तू, वृथा याचना अब मत कर।।151।।

---

1. छोड़ने योग्य दोषों का कारण, 2. हित का कारण, 3. सम्पत्ति आदि का संयोग और वियोग, 4. कलि-काल, 5. वनवासी साधु।

कौन दीन और कौन अभिमानी

परमाणु से कोई लघु नहिं, नभ से हुआ न कोई महान।
ऐसा कहने वाले ने नहिं देखे, दीन सहित अभिमान।।152।।

याचक का गौरव दाता में चला जाता है

याचक का गौरव दाता में चला गया निश्चित मानो।
याचक लघु अरु दाता गुरु अन्यथा हुए कैसे जानो।।153।।

वांछक और अवांछक की स्थिति

वांछक पाता अधोगति अरु ऊर्ध्वगति नहिं वांछक जो।
स्पष्ट बताते ऊँचे नीचे हुए तुला के पलड़े ज्यों।।154।।

दरिद्रता की श्रेष्ठता!

सभी धनी से आशा रखते, वह न दे सके सबको धन।
याचक विमुख होय धनपति से, अत: श्रेष्ठ होना निर्धन।।155।।

आशारूपी खाई की अगाधता

निधियों द्वारा भी नहिं भरती, जो अगाध आशा की खान।
वह जिस धन से भर जाती है, वह सच्चा धन स्वाभिमान।।156।।

आशारूपी खाई भरने का उपाय : तृष्णा का परित्याग

तीन लोक भी जिसमें लघु, यह आशारूपी खान अगाध।
करें सत्पुरुष पृथ्वीतल सम उसमें स्थित धन का त्याग।।157।।

निर्ग्रन्थों द्वारा परिग्रह-ग्रहण का निषेध

तन-तिथि हेतु आगमोक्त विधि से मुनिगण लेते आहार।
किसी काल में भक्तजनों द्वारा प्रदत्त तप-वर्धनहार।।
तो भी वह नितान्त लज्जा का कारण होता है उनको।
अन्य परिग्रह-दुर्ग्रह ग्रहण करें कैसे आश्चर्य अहो।।158।।

कलि-काल का चक्रवर्तित्व

दाता हुए गृहस्थ, देयधन मुनिगण जो लेते आहार।
तन-विरक्त होकर भी लेते, चाहें सब जग का उपकार।।
तो भी स्वाभिमानयुत लज्जित, मुनिपद का फल यह आहार-
राग-द्वेष वश मानें, देखो कलि का चक्रवर्ति-आचार।।159।।

कर्मों के निमित्त से होने वाली हानि

जिसने लोक-प्रकाशक पर स्वामित्व तुम्हारा लुप्त किया।
आत्मोत्पन्न सौख्य को भी उन कर्मों ने निर्मूल किया।।
अरे दीन! उन कर्मज इन्द्रिय-सुख में ही सन्तुष्ट हुआ।
कष्ट भोग नीरस भोजन के बन्धन में तू तुष्ट हुआ।।160।।

इन्द्रिय सुख के लिए भी धैर्य की आवश्यकता

भोग स्वर्ग में, जरा ठहर रे भिक्षु तुझे उनकी तृष्णा।
भोजन तो पकने दे! पानी पी क्यों नष्ट क्षुधा करता।।161।।

कर्म महामुनियों का कुछ भी बिगाड़ने में असमर्थ

निर्धनता ही धन है और मृत्यु ही है जीवन जिनका।
ज्ञान-चक्षुयुत सज्ज्न का क्या कर सकते ये कर्म भला।।162।।

आशा को निराश करनेवालों का कर्म कुछ नहीं बिगाड़ सकते

जीवन अरु धन-अभिलाषी के लिए विधाता विधि ही है।
जिनकी आशा नष्ट हुई उनका क्या कर सकता विधि है?।।163।।

स्तुत्य और निंद्य व्यक्तियों की चरम स्थिति

स्तुति अरु निन्दा दोनों की चरम कोटि को प्राप्त हुए।
तप के लिए राज्य-त्यागी अरु तप-त्यागी विषयाशा से।।164।।

विषयाभिलाषियों द्वारा तप छोड़ने पर आश्चर्य

अनुपम आत्मोत्पन्न शाश्वत-सुख फल तप से होता जान।
तप के लिए चक तजते चक्री इसमें आश्चर्य न मान।।

किन्तु सुबुद्धि त्यक्त विषय-विष पुन: भोग अभिलाषा से।
गुरुतम तप को तज देते हैं अति आश्चर्य हमें इससे।।165।।

तप से च्युत होने वालों की निर्भयता पर आश्चर्य

ऊँची शय्या से बालक गिरने से डरता पीड़ा जान।
किन्तु त्रिलोक-शिखर तप से गिरने का भय न करे धीमान।।166।।

तप को मलिन करनेवालों की निन्दा

सर्व दुराचारों की शुद्धि होती है जिस तप द्वारा।
वह तप मलिन किया जाता है अन्य निंद्य पुरुषों द्वारा।।167।।

आश्चर्य-उत्पत्ति के दो प्रमुख कारण

है त्रिलोक में शत-शत कौतुक किन्तु हमें दो ही भासें।
अमृत पीकर वमें अभागे, संयम निधि पाकर त्यागें।।168।।

रागादि का नाश करने की प्रेरणा

बहु आरम्भ-परिग्रह आदिक बाह्य-शत्रु का नाश किया।
अतुल आत्मबल अर्जित करके अब न कोइ भी शत्रु रहा।।
भोजन शयन गमन स्थिति में सावधान होकर रहना।
अन्तरंग अरि नाश हेतु तुम अपनी परिरक्षा करना।।169।।

शास्त्राभ्यास की प्रेरणा

अनेकान्तमय अर्थ पुष्प-फल के प्रभार से हुए विनम्र।
वचनरूप पत्तों से शोभित विस्तृत नय शाखा संयुक्त।।
उन्नत अरु सम्यक् विस्तृत मतिज्ञान मूल पर थिर श्रुतज्ञान।
मन-मर्कट को नित्य रमाओ नित प्रतिदिन हे बुद्धिमान।।170।।

वस्तु का अनेकान्तिक स्वरूप

तद्रूप धर्म अरु अतद्रूपपन सहित वस्तु नहिं होती नाश।
विश्व अनादि-अनन्त विश्वविद् करते ऐसा नित विश्वास।।171।।

प्रमाण से सिद्ध वस्तु का अनेकान्तिक स्वरूप

एक वस्तु है एक काल में ध्रौव्योत्पाद-विनाश स्वरूप।
है प्रमाण से सिद्ध, अन्यथा सिद्ध न होता वस्तु स्वरूप।।172।।

परस्पर विरुद्ध धर्ममय सभी पदार्थ

नहीं सर्वथा नित्य सर्वथा क्षणिक नहीं वस्तु का रूप।
मात्र ज्ञानमय, नहिं अभावमय, निर्बाधित भासित न स्वरूप।।
प्रतिक्षण जानो तत्त्व तत्-अतत् वस्तु का अविरुद्ध स्वरूप।
जैसा एक पदार्थ अनादि-निधन है वैसा सबका रूप।।173।।

आत्मा का असाधारण स्वरूप

ज्ञान स्वभावी है आतम अरु कहा स्वभाव विनाश-विहीन।
ज्ञान भावना भाओ यदि हो अभिलाषा शाश्वत पद की।।174।।

ज्ञान का फल और मोह की महिमा

ज्ञान-भावना का फल आदरणीय तथा अविनाशी ज्ञान।
किन्तु अन्य फल की वांछा को अहो मोह की महिमा जान।।175।।

भव्य और अभव्य में अंतर

शास्त्र-अग्नि में भव्य विशुद्ध, मुक्त होता है मणी समान।
किन्तु दुष्ट हो दीप्त, मलिन, अरु भस्मरूप अंगार समान।।176।।

ध्यान की प्रक्रिया

वस्तु स्वरूप यथार्थ देखते, ज्ञानी ज्ञान-किरण विस्तार।
राग-द्वेष से रहित ध्यान करते आतम के जाननहार।।177।।

अज्ञानी को कर्म-बन्ध पूर्वक होने वाली निर्जरा

कर्म-बन्ध से युक्त निर्जरा जिसको वह भ्रमता संसार।
खुलती और लिपटती रस्सी युक्त मथानी के अनुसार।।178।।

अविपाक निर्जरा की प्रेरणा

खुलती रस्सी युक्त मथानी के समान भ्रमते बँधते।
जीव! उसे इस तरह खोलना पुनः न बन्ध भ्रमण होवे।।179।।

बन्ध और मुक्ति का कारण

राग-द्वेष भावों से युक्त प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति से।
बन्धते और मुक्त होते हैं तत्त्वज्ञान सहित इनसे।।180।।

पाप, पुण्य और मुक्ति का कारण

गुण से द्वेष, दोष से हो अनुराग-बुद्धि तो होता पाप।
हो इससे विपरीत, पुण्य हो, मुक्ति उभय बिन अपने आप।।181।।

राग-द्वेष का कारण

यथा बीज से मूलांकुर हो तथा मोह से राग-द्वेष।
ज्ञान-अग्नि में मोह जला दो, दहना चाहो राग-द्वेष।।182।।

मोह का स्वरूप और उसके विनाश का उपाय

गुण-दोषों से हुआ, पुरातन, गहरा अरु गति-पीड़ा युक्त।
त्याग-ग्रहण से मोह घाव यह नष्ट तथा होता है मुक्त।।183।।

मृत्यु के पश्चात् मित्र भी शत्रु हैं

मित्र सुखी करते हैं और दुखी करने वाले शत्रु।
मरकर दुखी करें उन मित्रों का क्या शोक! हुए शत्रु।।184।।

इष्ट-वियोग में शोक करने वाले की स्थिति

रे अलंघ्य है मरण स्वजन का फिर भी रुदन करे क्यों मूढ़।
और स्वयं का मरण निकट लख अतिविलाप जो करे विमूढ़।।
निर्भय मरण-साध्य अतिशय यश और प्राप्त हो उत्तम लोक।
कैसे उसको मिले, सुधी! मरने पर किंचित् करो न शोक।।185।।

शोक का कारण और फल तथा उसके अभाव की प्रेरणा

इष्ट-हानि से शोक-दुख अरु इष्ट-लाभ से राग-सुखी।
अतः हानि में शोक रहित हो सुधी सर्वदा रहो सुखी।।186।।

पर-लोक में कौन सुखी और कौन दुखी?

जो यहाँ सुखी वह वहाँ सुखी जो यहाँ दुखी वह वहाँ दुखी।
सकल-त्याग में ही सुख है, विपरीत-ग्रहण में महादुखी।।187।।

जन्म की मरण से समानता

एक मरण से मरणान्तर की प्राप्ति यही है जन्म सुजान।
अतः जन्म में हर्षित हैं जो मरण-स्नेही उनको जान।।188।।

लाभ और पूजादि की कामना का निषेध

यदि शास्त्रों का अध्ययन करता घोर तपस्या भी चिरकाल।
उनके फल में लाभ और पूजादिक की वाञ्छायें पाल।।
तप-तरु के है फूल तोड़ता होकर अरे! विवेक विहीन।
कैसे प्राप्त करेगा रसमय पके फलों को तू मतिहीन।।189।।

तप और श्रुत का वास्तविक फल

करो निरन्तर श्रुताभ्यास तुम लोक प्रतिष्ठा से निरपेक्ष।
करो देह का शोषण भी धारण करके तुम काय-क्लेश।।
क्योंकि महामुनि तप अरु श्रुत का फल कहते हैं उपशम भाव।
इससे जीत सको, दुर्जय शत्रु जो विषय-कषाय विभाव।।190।।

विषयाभिलाषा से अनर्थ

लौकिक विषयीजन को लख क्यों करता विषयों की वांछा।
महा अनर्थ करे, यदि अल्प होय तो भी यह विषयेच्छा।।
होती रोगी को घृतमय स्निग्धादि वस्तुएँ सदा असेव्य।
जैसा दोष उसे उपजावें अन्यों को नहिं वैसा खेद।।191।।

विषयों को दोष जानकर भी उनके सेवन में आश्चर्य

अहित विषय में अनुरागी भी प्रिय नारी तजता तत्काल।
एक बार भी सुन लेता है यदि वह उसकी खोटी चाल।।
दोष देखता विषयों के भव-भव में निज-हितरत साक्षात्।
तो भी विषयरूप विष-मिश्रित भोजन को क्यों लेता स्वाद।।192।।

आत्म-हितकारी आचरण की प्रेरणा

आत्म-विनाशक आचरणों से हुआ दुरात्मन् तू चिरकाल।
निज हितकारी आचरणों से उत्तमात्मा हो तत्काल।।
स्वयं साध्य परमात्मरूप होकर पाएगा केवलज्ञान।
निज से ही उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख भोगेगा तू भगवान।।193।।

बाह्य तप करने की प्रेरणा

इस शरीर ने बहुत भ्रमाया दास समान तुझे चिरकाल।
अब तुम अनशन ऊनोदर रस-त्याग विधि धारो तत्काल।।
तप विशेष तुम करो निरन्तर आयु कर्म हो अवसान।
करो देह को क्षीण आज तुम, हुए हस्तगत-शत्रु समान।।194।।

शरीर ही अनर्थों की परम्परा का कारण है

प्रथम देह का जन्म, देह-थित दुष्ट इन्द्रियाँ चाहें अर्थ।
उनसे भय अपमान कुगति, यह तन परम्परा मूल अनर्थ।।195।।

अज्ञानियों द्वारा शरीर-पोषण का प्रयोजन

तन को पुष्ट करें अज्ञानी विषयों का सेवन करते।
कुछ भी दुष्कर इन्हें नहीं विष से जीवन आशा रखते।।196।।

कलि-काल में तपस्वियों की कष्टकारक वृत्ति

वन में इधर-उधर भ्रम कर फिर निकट ग्राम के बसें अहो!
रात्रि काल में मृग समान, तपसी कलि में हा कष्ट अहो।।197।।

....इससे तो गृहस्थ अवस्था ही श्रेष्ठ है

आज किया तप कल लुट जाए, नारी नेत्र-कटाक्षों से।
हो विलुप्त वैराग्य, श्रेष्ठ गृह, जन्म विवर्धक[1] इस तप से।।198।।

शरीर और स्त्री से राग छोड़ने की प्रेरणा

आत्म-प्रयोजन से वंचित हो त्यागी लज्जा अरु अभिमान।
भव-भव में दुख पाये हैं नारी के कारण तूने जान।।
यह तन अरु नारी जायें नहिं एक कदम भी तेरे साथ।
बुद्धिमान! मत करो मित्रता इस तन अरु नारी के साथ।।199।।

दो द्रव्यों में एकत्व होना असम्भव

कोई द्रव्य भी अन्य द्रव्य से प्राप्त नहीं करता एकत्व।
किसी कर्म-वश देहादिक रूपी से तू कर रहा ममत्व।।
यह तन तेरा रूप नहीं है तू इसमें आसक्तमति।
अत: हुआ तू भव-वन में छेदन-भेदन से बहुत दुखी।।200।।

शरीर से ममत्व और सुख की आशा रखना आश्चर्यजनक है

उत्पत्ति है माता, मरण पिता, हैं भाई आधि-व्याधि।
अन्त काल में जरा मित्र है तो भी आशा इस तन की।।201।।

शरीर को धिक्कार है

शुद्ध अमूर्तिक स्व-पर प्रकाशक, अशुचि किया जड़ ने चेतन।
किसको मलिन करें नहिं मूर्तिक अशुचि अचेतन धिक् धिक् तन।।202।।

सच्चे ज्ञान और सच्चे साहस का स्वरूप

हाय! हाय!! तू नष्ट हुआ इस तन से करके अतिशय राग।
ज्ञान यही 'तन अशुचि जानना' साहस है -'इस तन का त्याग'।।203।।

1. जन्म को बढ़ाने वाला।

रोग होने पर ज्ञानियों की परिणति

रोगादिक बढ़ने पर भी यति किंचित् खेद नहीं करते।
बढ़े नदी में नीर नाव में बैठे नर न क्षुभित होते।।204।।

रोगोत्पत्ति हो तो उसका कर प्रतिकार बसो तन में।
यदि असाध्य हो तो द्वितीय गति[1] तन का त्याग करो मन में[2]।।
घर जलता तो आग बुझाकर प्राणी उसमें रहते हैं।
किन्तु बुझाना हो अशक्य तो बुधजन घर को तजते हैं।।205।।

रोग मिटने से सुख मानना अज्ञान है

जैसे शिर का भार रखें कन्धे पर यत्न सहित प्राणी।
किन्तु भार तो रहा देह पर, सुखी मानते अज्ञानी।।206।।

असाध्य रोग होने पर शरीर से उदास होने की प्रेरणा

रोग शान्त हो सकता हो तो करना तुम उसका प्रतिकार।
यदि न मिटे तो रहो निराकुल-यह उसका सच्चा प्रतिकार।।207।।

शरीर का ग्रहण जन्म का और त्याग मुक्ति का कारण है

जिसका ग्रहण जन्म का कारण, त्याग मुक्ति-कारण जिसका।
वह शरीर ही त्याज्य कहा है, क्षुद्र विचारों से फिर क्या।।208।।

शरीर के कारण जीव भी अस्पृश्य

महामलिन तन फिर भी चेतन इसे दिलाता है पद पूज्य।
धिक् है दुष्चरित्र इस तन का चेतन को करता अस्पृश्य।।209।।

शरीर के तीन भाग

प्रथम भाग रस आदि रूप तन दूजा ज्ञानावरणादिक भाग।
ज्ञानादिक गुण भाग तीसरा, संसारी के तीन प्रभाग।।210।।

1. दूसरा उपाय, 2. शरीर के प्रति राग छोड़ो।

भाग-त्रयमय कर्म-बन्धमय नित्य त्रिकाली आतम को।
वही तत्त्वज्ञानी है द्वय भागों से भिन्न जानता जो।।211।।

कषाय-शत्रु को जीतना आसान

घोर तपस्या नहीं करे यदि कष्ट सहन असमर्थ सुजान।
चित्त-साध्य इन रिपु-कषाय को, नहीं जीतता तो अज्ञान।।212।।

कषायों के रहते हुए गुणों की प्राप्ति होना दुर्लभ

जब तक शुद्ध अगाध हृदय-सर में कषाय जलचर का वास।
तब तक गुण न प्रवेश करें शम-दम से जय का करो प्रयास।।213।।

कषायों के आधीन होने वालों का उपहास

हेतु और फल को विघात, पर-लोक-सिद्धि चाहें विद्वान।
करे प्रशंसा, साधनरूप स्वयं मन को कहते यह शान्त।।
धिक् धिक् उनका कार्य, विरोधी बिल्ली अरु चूहे जैसा।
कलि प्रभाव से गए ठगाए नष्ट हुआ फल द्वय उनका।।214।।

साधर्मियों के प्रति ईर्ष्या के त्याग की प्रेरणा

तप करने को हुआ उद्यमी किया कषायों का अपमान।
हुआ विशाल ज्ञान जलनिधि सम अल्प दोष से रहा अजान।।
यदि प्रवाह जल सूखे तो भी रहे अल्प जल गूढ़ अहो!
कर्मवशात् स्वतुल्य जनों में दुर्जन यह मात्सर्य तजो।।215।।

क्रोध से होने वाली हानि

मन में बैठा कामदेव, हर ने नहिं जाना हो क्रोधान्ध।
बाह्य वस्तु को जला दिया है भ्रम से उसे समझकर काम।।
उसी कामकृत घोर दुरावस्था को फिर वह प्राप्त हुआ।।
क्रोधोदय से जग में किसके नहीं कार्य का ह्रास हुआ।।216।।

मान से होने वाली हानि

दक्षिण भुज थित चक्र छोड़कर, तप के द्वारा मुक्त हुए।
अल्प मान करता महती क्षति बाहुबली चिर क्लिष्ट हुए।।217।।

मान के त्याग की प्रेरणा

सत्य वचन में, मति में आगम, हृदय दया, भुज में विक्रम।
याचकगण कोदान तथा निवृत्ति मार्ग में करें गमन।।
श्रुत-गोचर जन ऐसे गुणयुत होकर भी थे निरहंकार।
किंतु आज गुण लेशमात्र नहिं, फिर भी है अभिमान अपार।।218।।

सब पदार्थ एक-दूसरे से बढ़कर हैं, अत: गर्व करना व्यर्थ है

सब पदार्थ पृथ्वी पर रहते, उसे अन्य धारण करते।
वे पदार्थ भी अन्य द्रव्य के उदर मध्य निश्चल बैठे।।
भगवन्तों के ज्ञान-कोण में वह भीनिज को लीन करे।
अत: अन्य को अधिक जानकर, कौन विवेकी गर्व करे।।219।।

माया से होने वाली हानि

स्वर्णिम मृग के कपटभाव से, यश मरीचि का हुआ मलीन।
'अश्वत्थामा हतो' कहा, स्वजनों में हुए युधिष्ठिर हीन।।
कपटपूर्ण वटु वेश धारने से ही कृष्ण हुए हैं श्याम।
अत: कपट का अल्प भाव भी, दुग्ध राशि में जहर समान।।220।।

महागर्त यह मायाचरण सघन मिथ्यातम से है व्याप्त।
जिसमें छिपे हुए क्रोधादिक विषधर रहते सदा अलक्ष्य।।221।।

मेरे किए गुप्त पापों का अथवा हुई गुणों की हानि।
नहीं किसी को ज्ञात हुई - ऐसा मत समझ अरे धीमान्।।
धवल रश्मि से दाह जगत को धोता है यह चन्द्र सुजान।
हुआ राहु से ग्रस्त, गुप्त होकर भी किसे न होता ज्ञान।।222।।

लोभ से होने वाली हानि

वनचर-भय से दौड़ रही पर उलझी पूँछ लताओं में।
दैवयोग से, चमर-गाय हो मुग्ध पूँछ के बालों में।।

वहीं खड़ी रहती, वनचर से उसके प्राण हरे जाते।
तृष्णातुर प्राणी विपत्ति में प्राय: ही मारे जाते।।223।।

निकट भव्य जीवों को होने वाले भाव

विषय-विरक्ति, परिग्रह त्यागो, करो कषायों का निग्रह।
शम दम यम अभ्यास तत्त्व का तपश्चरण का हो उद्यम।।
मनोवृत्ति को नियमित करना जिन-भक्ति अरु करुणाभाव।
जब समीप तट भव-समुद्र का भव्यों के हों ऐसे भाव।।224।।

नियम और यम में तत्पर जो देहादिक से चित्त निवृत्त।
सब जीवों में करुण भावयुत और समाधिदशा को प्राप्त।।
आगमोक्त आहार अल्प है निद्रा को है किया निरस्त।
पाया है अध्यात्म सार दहते क्लेशों का जाल समस्त।।225।।

गुणों से मण्डित मुनिराज ही मुक्ति के पात्र

हेय ग्राह्य अर्थों को जानें हिंसादिक पापों से दूर।
निज-हित निहित चित्त है जिनका इंद्रिय शांत हुई सम्पूर्ण।।
निज-पर हितकारी वाणी है हुए सर्व संकल्प विमुक्त।
सर्व प्रपंच विहीन मुनीश्वर क्यों न पात्र बन होंगे मुक्त।।226।।

रत्नत्रय की रक्षा करने की प्रेरणा

विषय-नृपति के दास हुए जो निज को पर के करें अधीन।
गुण अरु दोष विवेकशून्य जो, उनका क्या हो सकता क्षीण।।
तीन भुवन उद्योतित जिससे वह रत्नत्रय तेरे पास।
भ्रमते इन्द्रिय चोर सर्वत: अत: निरन्तर भय से जाग।।227।।

संयम के उपकरणों से भी अनुराग करने का निषेध

रम्य वस्तुओं में निर्मोही, क्यों संयम-साधन में लीन।
रोगाशंका से भोजन तज, अति औषधि से क्यों न अजीर्ण।।228।।

तप और श्रुतरूपी निधि की रक्षा करने की प्रेरणा

जैसे कृषक चोर आदि की बाधाओं को करके पार।
घर में रखकर अन्न सुरक्षित, होता है निश्चिन्त अपार।।
इसी तरह तप-श्रुत निधि निज में स्थापित करके धीमान्।
करण-चोर से रक्षा कर अनुभव करता कृतकृत्य सुजान।।229।।

आशारूपी शत्रु से सावधान रहने की शिक्षा

''मैं ज्ञानी हूँ, मुझे नहीं कुछ हानि'' ज्ञान का गर्व न कर।
तीन भुवन को क्षुब्ध करे, आशा-रिपु की न उपेक्षा कर।।
देखो जलनिधि में अगाध जल, पर बाधित बड़वानल से।
शत्रु गोद में जिसकी बैठा, कैसे शान्ति मिले उसे।।230।।

मोह का सर्वथा नाश करने की प्रेरणा

ज्ञान और चारित्रवान रागी हो तो न प्रशंसा युक्त।
मलिन कार्य उत्पन्न करे दीपकवत् काजल तैल संयुक्त।।231।।

वीतरागता के अभाव में दुख

राग करे फिर द्वेष करे फिर पुन: राग अरु द्वेष करे।
राग-द्वेष से रहित तीसरे पद-विहीन दुख क्यों न सहे।।232।।

इन्द्रिय-सुख से दुखों की शान्ति असम्भव

तू दुखाग्नि से तप्त लौहवत् इन्द्रिय-सुखकण से नहिं शांत।
मोक्षरूप सुख के समुद्र में जब तक मग्न न हो निर्भ्रान्त।।233।।

ज्ञान-चारित्ररूपी मूल्य चुकाकर मोक्ष प्राप्त करने की प्रेरणा

सम्यग्दर्शन की अग्रिम दे, किया मोक्ष को आरक्षित।
ज्ञान चरित सम्पूर्ण मूल्य दे, उसे हस्तगत कर ले शीघ्र।।234।।

भोग्य और अभोग्य के विकल्पों से पार

प्रवृत्ति और निवृत्ति अपेक्षा भोग्याभोग्य जगत् अद्वैत।
हे मुमुक्षु! अभ्यास करो, अरु तजो अभोग्य-भोग्य का द्वैत।।235।।

प्रवृत्ति और निवृत्ति से पार अवस्था प्राप्त करने की प्रेरणा

हो निवृत्ति भावना तभी तक जबतक त्याज्य-वस्तु संबंध।
उनका हो अभाव, तब ध्रुव पद, वृत्ति-निवृत्तिविहीन अबंध।।236।।

प्रवृत्ति, निवृत्ति और उनके कारण

राग-द्वेष ही है प्रवृत्ति अरु है निवृत्ति ही उनका त्याग।
इनका है सम्बन्ध बाह्य-द्रव्यों से इन्हें करो परित्याग।।237।।

अपूर्व-अपूर्व भाव करने की प्रेरणा

भाता हूँ अब भवावर्त में, पूर्व नहीं भाए जो भाव।
भाये जो अब उन्हें ना भाऊँ, चाहूँ भव का शीघ्र अभाव।।238।।

हेय-उपादेय का स्वरूप

शुभ अरु अशुभ पुण्य-पाप अरु सुख-दुख ये छह कहे सुजान।
उपादेय हितकार आदि-त्रय हेय अन्तत्रय अहित बखान।।239।।

अशुभादि के त्याग का क्रम

उनमें भी हो प्रथम त्याज्य, तो शेष-द्वय का स्वत: अभाव।
प्राप्त परमपद शुद्ध भाव से होता शुभ का तभी अभाव।।240।।

आत्मा और बन्ध की सिद्धि पूर्वक मोक्ष की सिद्धि

है अनादि से बँधा आत्मा, बन्धन होता आस्रव से।
वह क्रोधादिजनित अरु क्रोध प्रमादज, जो हो अविरति से।।
मिथ्यात्व पुष्ट करता अविरति को, काललब्धि की हो जब प्राप्ति।
समकित व्रत विवेक निर्मलता और योग के क्रम से मुक्ति।।241।।

शरीरादि से प्रीति ही आपत्ति

''यह मेरा मैं इसका'' ऐसी प्रीति वही आपत्ति समान।
जबतक है स्वामित्व देह में तप-फल की क्या आशा जान।।242।।

देह के प्रति एकत्व बुद्धि के त्याग की प्रेरणा

निज को तनमय, तन को निजमय, भ्रम से मान भवार्णव में।
मैं हूँ मैं, पर है पर, मुझमें पर नहिं, मैं न रहूँ पर में।।243।।

विद्वानों का अपूर्व कौशल

पूर्व जन्म में जो जो वस्तु हुई बन्ध के कारणरूप।
पर के प्रति अनुराग बुद्धि से किन्तु लखा जब वस्तुस्वरूप।।
हुआ चरम वैराग्य, वही वस्तुयें हुई मुक्ति साधन।
अहो! अलौकिक, कष्ट-गम्य है विद्वानों का यह कौशल।।244।।

बन्ध और निर्जरा की परिपाटी

कर्मबन्ध है कहीं अधिक अरु हीन कहीं हैं कहीं समान।
कहीं मात्र निर्जरा कहीं है बन्ध मोक्ष का यह क्रम जान।।245।।

योगी कौन?

जिस योगी के पुण्य-पाप, फल दिए बिना खिर जाते हैं।
वह योगी निर्वाण प्राप्त करता न कर्म फिर आते हैं।।246।।

प्रतिज्ञाओं के बाँध से तपरूपी सरोवर की सुरक्षा

गुणरूपी जल से भरपूर महातपरूप सरोवर जान।
किंचित् क्षति की कर न उपेक्षा मर्यादा का सुदृढ़ बाँध।।247।।

अल्प दोष भी बहुत हानिकारक है

गुप्ति कपाट धैर्य है भित्ति बुद्धिरूप दृढ़ नींव सुजान।
अल्प छिद्रयुत मुनिगृह, राग कुटिल सर्पों से विकृत मान।।248।।

पर-निन्दा के त्याग की प्रेरणा

अति दुर्धर तप द्वारा अपने दोष-हरण में उद्यमवान।
पर-निन्दा भोजन से उन दोषों को पुष्ट करे अज्ञान।।249।।

गुणवानों के अल्प दोष भी प्रसिद्ध

सर्वगुणाकर महापुरुष में अल्प दोष भी कर्म-वशात्।
चन्द्र-कलंक समान अन्ध भी उसे देखने हेतु समर्थ।।
विश्व देखता दोष, किन्तु नहिं जाता महापुरुष स्थान।
चन्द्र-प्रभा ही दोष दिखाती कोई न जाता चन्द्र स्थान।।250।।

ज्ञानियों की वैचारिक दशा

पूर्व काल में किया आचरण था अज्ञान चेष्टा से।
उत्तर-उत्तर ज्ञान-वृद्धि से योगीजन को प्रतिभासे।।251।।

विवेकियों का आचरण

महा-तपस्वी की भी आशा-बेलि सदा है तरुणाती।
मनोमूल से ममता-जल पाकर रहती है हरी-भरी।।
अत: विवेकी कष्ट-साध्य आचरण निरन्तर करते हैं।
चिर-परिचित इस तन से भी वे निःस्पृह होकर रहते हैं।।252।।

तन और चेतन की भिन्नता

क्षीर-नीर वत् हैं अभेद तन-चेतन फिर भी भिन्न रहें।
बाह्य वस्तु प्रत्यक्ष भिन्न हैं फिर उनकी क्या बात कहें?।।253।।

शरीर से राग छोड़ने की प्रेरणा

देह संग से तप्त हुआ हूँ अग्नि संग से नीर समान।
अत: देह परित्याग मुमुक्ष सुख अनुभवते निज को जान।।254।।

मोह–त्याग की प्रेरणा

उर में स्थित महा–मोह, जो है अनादि से पुष्ट हुआ।
जिनने वमन किया सुयोग से उनका ऊर्ध्व विशुद्ध हुआ।।255।।

साधुओं को सभी पदार्थ सुख के निमित्त

है एकत्व जिन्हें चक्री–सम वांछित अर्थ शरीर–विनाश।
अशुभ–निर्जरा दुखमय है सुखमय संसारसौख्य का नाश।।
सर्वत्याग है महा–महोत्सव संग्रह प्राण–त्याग सम जान।
कौन उन्हें नहिं सुख निमित्त है, साधु सुखी यह सत्य सुजान।।256।।

कर्मोदय होने पर मुनिराज को खेद नहीं होता

उग्र तपोबल से उदयावलि में लायें गोपुच्छ समान।
उदयागत हों स्वयं कर्म तो खेद करें क्यों मुनि विद्वान।।
जिसे जीतने की इच्छा से करें युद्ध के लिए गमन।
शत्रु स्वयं आ करे युद्ध तो क्या हानि? हो उसका अन्त।।257।।

मुनिराज की ध्यानस्थ अवस्था

एकाकित्व प्रतिज्ञायुत परिषह सामर्थ्य सकल परित्याग।
हैं अचिन्त्य, यदि देह सहायक जानें, होते लज्जावान।।
साध्यसिद्धि में तत्पर नरसिंह, तन–वियोग का करें विचार।
ध्यान धरें पल्यंकासन गिरि–गहन गुफा में मोह निवार।।258।।

निःस्पृह मुनिराज से प्रार्थना

तन में लगी धूल है भूषण और शिलातल है स्थान।
कंकरीली भू शय्या, सिंह–गुफा प्राकृतिक वास सुजान।।
यह मैं, मैं इनका – यह बुद्धि नष्ट हुई, विनशा अज्ञान।
मन को करें पवित्र हमारे, मुक्ति–पात्र निःस्पृह धन–ज्ञान।।259।।

चारित्रवन्त साधु धन्य हैं!

अतिशय तप–प्रभाव के द्वारा ज्ञानज्योति का हुआ प्रसार।
प्राप्त किया है कैसे भी निज आत्म–जन्य आनन्द अपार।।
वन्य जीव विश्रान्त हुए हिरणी के नेत्र करें विश्वास।
धन्य धन्य हैं धीर अचिन्त्य चारित्रवन्त वन में चिर–वास।।260।।

भेद–विज्ञान की महिमा

ज्ञान–राग का भेद अगोचर उसमें थिर जिनका मतिज्ञान।
भेदज्ञान के बिना न जिसको मिलता कभी नहीं विश्राम।।
बाह्य वस्तु से वृत्ति हटाकर, अन्तस् में स्थित शम–धन।
किसे पवित्र करे नहिं उनके चरण–कमल स्थित रज–धन।।261।।

सज्जनों द्वारा परिग्रह–त्यागी वन्दनीय

जीवों के जो पूर्व जन्म में संचित कर्म अशुभ या शुभ।
उन्हीं दैव की हो उदीरणा अनुभव करते दुख या सुख।।
श्लाघनीय शुभ करने वाला पर जो चाहे द्वय विनशे।
सर्वारम्भ–परिग्रह गृह–परित्यागी पूज्य सज्जनों से।।262।।

कर्मोदय में उदसीन जीव को नवीन कर्म–बन्ध नहीं

पूर्वोपार्जित कर्मोदय से सुख–दुख दोनों होते हैं।
क्यों प्रीति? क्यों खेद? सत्पुरुष यह विचार ही करते हैं।।
उदासीन उन सत्पुरुषों के पूर्व–कर्म खिर जाते हैं।
नए नहीं बँधते, मणि–सम वे सदा प्रकाशित होते हैं।।263।।

यतियों की वृत्ति आश्चर्य की भूमि

सकल काष्ठ को निष्ठुरता से भस्म करे जो अग्नि समान।
देह गेह से भिन्न प्रकाशित सकल विमल जो केवलज्ञान।।

ईंधन के अभाव में भी ज्यों दहन प्रज्वलित होता है।
अति आश्चर्य अदेही का भी, ज्ञान प्रज्वलित रहता है।।264।।

मुक्ति में ज्ञानादि गुणों का नाश मानना मिथ्या

गुणमय होता गुणी, अत: गुण के विनाश से गुणी विनाश।
अत: अन्यमत द्वारा कल्पित, शून्य अवस्था में निर्वाण।।265।।

आत्मा का स्वरूप

सुखी अजन्मा अविनाशी कर्त्ता-भोक्ता अरु मूर्ति-रहित।
देह मात्र मलरहित प्रभू! हो ऊर्ध्वगमन कर अचल-स्थित।।266।।

सिद्ध भगवान अनन्त सुखमय हैं

निजाधीन होने से दुख भी तपोधनों को सुखमय है।
निजाधीन सुखयुक्त सिद्ध को कैसे सुखमय नहीं कहें।।267।।

ग्रन्थ के अभ्यास का फल

कतिपय वचन-गम्य रचना से होता जिनका चित्त उदार।
उनका चित्त रमाने वाला ग्रन्थ रचा है भली प्रकार।।
जो अपने अन्तस में इसका अविकल चिन्तन करते हैं।
सब विपत्ति से रहित, मोक्ष-लक्ष्मी का आश्रय करते हैं।।268।।

गुरुवर जिनसेनाचार्य का स्मरण

श्री जिनसेनाचार्य-चरण-चिन्तन में रत है जिनका चित्त।
उन है भदन्त गुणभद्र रचित कृति आत्मानुशासन वर्णित।।269।।

अन्तिम मंगलाचरण

जिनके ज्ञानरूप सरवर में कमल तुल्य जग है भासित।
ऋषभ, नाभिनन्दन भविजन के हैं महान कल्याण निमित्त।।270।।

*****

योगसार

(हरिगीत)

शुद्ध ध्यानारूढ़ होकर कर्म-मल प्रक्षाल कर।
जो निकल परमात्मा हुए उन सिद्ध प्रभु को नमन कर।।1।।

घातिया चारों विनाशे चतुष्टय प्रकटे अनन्त।
यह काव्य रचना ललित करता जिनेश्वर को कर नमन।।2।।

भयभीत जो संसार-दुख से मोक्ष-सुख चाहें अहो।
उन भव्य को सम्बोधने दोहा रचूँ एकाग्र हो।।3।।

जीव एवं काल भवसागर अनादि अनन्त हैं।
श्रद्धान मिथ्या से हुए मोही कभी सुख ना लहें।।4।।

चार गति दुख से डरें जो वे तजें परभाव सब।
शुद्धात्म का चिंतन करें प्राप्ति करें निर्वाण सुख।।5।।

जानकर आत्मा त्रिविध बहि-अन्तरात्मा अरु परम।
बहिरात्मा तज अन्तरात्मा हो लखो परमात्मा।।6।।

मिथ्यात्व मोहित आत्मा जाने नहीं परमात्मा।
संसार में भ्रमता सदा जिनवर कहें बहिरात्मा।।7।।

परिज्ञान कर जो स्व-पर का छोड़े सकल परभाव को।
जानो उसे पंडित अहो! वह आत्मा भव-पार हो।।8।।

जो शुद्ध निर्मल निकल जिन शिव बुद्ध एवं सान्त हैं।
जानो उसे परमात्मा निर्भ्रान्त हो, जिनवर कहें।।9।।

देहादि जो हैं भिन्न उनको मानता अपना अरे।
जिनवर कहें बहिरात्मा संसार में भ्रमता फिरे।।10।।

देहादि जो हैं भिन्न वे निजरूप नहिं होते कभी।
यह जानकर हे जीव! तुम निज को लखो निजरूप ही।।11।।

जो आत्मा को आत्मा जाने उसे निर्वाण हो।
पररूप माने आत्म को उसको भ्रमण संसार हो।।12।।

तप करो इच्छा रहित होकर आत्म का अनुभव करो।
तो शीघ्र पाओ परम-गति भव-ताप में फिर नहिं तपो।।13।।

परिणाम से हो बन्ध-मुक्ति जिनवचन श्रद्धान कर।
हे आत्मन्! यह जानकर निज-भाव का तू ज्ञान कर।।14।।

यदि आत्मा जाने नहीं बस पुण्य ही करता रहे।
शिव-सुख कभी नहिं, प्राप्त हो संसार में भ्रमता रहे।।15।।

निज आत्मदर्शन श्रेष्ठ है किंचित् न मानो अन्य को।
हे योगि! मुक्ति के लिए निश्चय नये यह जान लो।।16।।

मार्गणा गुणथान बस व्यवहार नय से हैं कहे।
परमेष्ठी पर दातार आतम ज्ञान ही निश्चय कहे।।17।।

गृहकार्य करते हुए भी यदि ज्ञान हेयाहेय का।
ध्यावे सदा जिन-रूप तो साम्राज्य पाये मोक्ष का।।18।।

सुमिरन करो चिन्तन करो ध्याओ जिनेश्वर शुद्ध मन।
इस ध्यान से क्षणमात्र में प्राप्ति करो तुम परम पद।।19।।

जिनराज अरु शुद्धात्म में किंचित् न जानो भेद को।
हे योगिजन! शिव-हेतु निश्चय से यही तुम जान लो।।20।।

जिनराज जो वह आत्मा, सिद्धान्त के इस सार को।
हे योगिजन! तुम जानकर अब तजो मायाचार को।।21।।

परमात्मा जो मैं वही जो मैं वही परमात्मा।
यह जानकर हे योगि! दूजा करो कोइ विकल्प ना।।22।।

पूर्ण लोकाकाश जितना है प्रदेशी शुद्ध यह।
निज आत्मा निशदिन मनन कर शीघ्र लो निर्वाण सुख।।23।।

परमार्थ से है लोक जितना, देह जितना अन्य[1] से।
अनुभव करो इस आत्मा का पार हो संसार से।।24।।

यह जीव लख-चौरासि योनी में अनादि से भ्रमा।
किन्तु समकित नहीं पाया जान लो भ्रान्ति बिना।।25।।

जो शुद्ध चेतनरूप जिन है बुद्ध केवल ज्ञानमय।
यह आत्मा निशदिन लखो यदि चाहते शिवसौख्यमय।।26।।

जब तक न शुद्ध स्वरूप का अनुभव करे यह आत्मा।
तब तक न मुक्ति प्राप्त हो चाहो जहाँ जाओ वहाँ।।27।।

त्रय लोक के जो ध्येय जिन हैं आत्मा जानो वही।
यह बात निश्चय से कही शंका करो इसमें नहीं।।28।।

जब तक न जाने एक शुद्ध परम पवित्र स्वभाव को।।
मूढ़ कृत व्रत नियम संयम मूलगुण, शिवपथ नहीं।।29।।

व्रत शील संयम युक्त जो शुद्धात्म का अनुभव करे।
जिनवर कहें वह शीघ्र ही निर्वाण सुख प्राप्ति करे।।30।।

जब तक न जाने एक शुद्ध परम पवित्र स्वभाव को।
व्रत शील संयम तप सभी हैं व्यर्थ शिव-सुख के लिए।।31।।

पुण्य से हो प्राप्त सुरगति पाप से नरकायु हो।
जो उभय तज निज जानता वह प्राप्त हो शिवधाम को।।32।।

1. व्यवहार।

व्रत नियम संयम शील तप व्यवहार से शिवपथ कहें।
किन्तु शिवपथ एक ही त्रयलोक में जो सार है।।33।।

पर-भाव को तज कर स्वयं में स्वयं का अनुभव करे।
वह पहुँचता शिव नगर में यह बात श्री जिनवर कहें।।34।।

जिनवर कथित छह द्रव्य एवं सप्त तत्त्व पदार्थ नव।
व्यवहार नय से कहे हैं जानो इन्हें तुम यत्न से।।35।।

जीव ही चेतन अकेला सार-भूत पदार्थ है।
शेष सब जानें अचेतन मुनि लहें भव पार है।।36।।

यदि करो शुद्धात्म का अनुभव तजो व्यवहार सब।
जिनवर प्रभु ऐसा कहें हो जाओगे भव-पार अब।।37।।

जीव और अजीव में जो भेद जाने, ज्ञान वह।
हे योगि! कहते योगिजन शिव हेतु है बस ज्ञान यह।।38।।

हे जीव! यदि शिव-लाभ चाहो, योगिजन कहते तुझे।
तो ज्ञानमात्र स्वभाव आत्मा, जीव उसको जान ले।।39।।

(चौपाई)

कौन समाधि करे को अर्चा, छूत-अछूत मान कर ठगता।
किससे मैत्री कलह कौन से, जित देखूँ तित जीव ही बसे।।40।।

(हरिगीत)

जब तक न जाने आत्मा सद्गुरु-प्रसाद निमित्त से।
तब तक कुतीर्थों में भ्रमे वह कपटमय क्रीड़ा करे।।41।।

तीर्थ एवं मंदिरों में देव नहिं, श्रुतधर कहें।
देह-देवल में बसे यह जान लो परमार्थ से।।42।।

देह-देवल में बसे जिन, लोक मंदिर में लखे।
आती हँसी यह देखकर धनवान भिक्षा को फिरे।।43।।

रे मूढ़! देव नहीं जिनालय मूर्ति अथवा चित्र में।
जिन देह-देवल में समझ ले धार समता चित्त में।।44।।

सब लोक कहते हैं अरे! जिनदेव मंदिर तीर्थ में।
यह जानते कुछ ज्ञानिजन जिन रहे तन-मंदिर विषें।।45।।

भयभीत हो यदि जरा-मृत्यु से करो तुम धर्म को।
पीकर रसायन धर्म का हो जाओ अजर अमर अहो।।46।।

मठ में रहे या शास्त्र बाँचे केश-लुंचन भी करे।
मुनि-वेश धारे किन्तु किंचित् धर्म नहिं होता अरे।।47।।

तजे राग-रु द्वेष दोनों बसे निज में ही अहो।
जिनवर कथित यह धर्म पंचम-गति इससे प्राप्त हो।।48।।

आयु गलती किन्तु आशा और मन गलता नहीं।
मोह वश नहिं करे निज हित भव-भ्रमण कारण यही।।49।।

जैसे रमे मन विषय में वैसे रमे यदि आत्म में।
योगी कहें हे भव्य! तो वह शीघ्र शिवपुर में बसे।।50।।

जैसे नरक का वास, जर्जर-देह त्यों यह जान लो।
निर्मल निजातम भावना कर शीघ्र ही भव-पार हो।।51।।

व्यवहार धन्धों में फँसे जग-जीव निज नहिं जानते।
अतएव वे निर्वाण पाते नहीं यह स्पष्ट है।।52।।

निज तत्त्व को जाने नहीं तो मूढ़ है शास्त्रज्ञ भी।
इसलिए शास्त्रज्ञ भी निर्वाण पा सकते नहीं।।53।।

बात क्या बहु पूछना मन-इन्द्रियों से दूर हो -
राग का जंजाल रोके सहज निज अनुभूति हो।।54।।

जीव पुद्गल भिन्न हैं व्यवहार भी सब भिन्न है।
छोड़ पुद्गल संग निज को गहे तो भवपार हो।।55।।

जीव को जाने नहीं स्पष्ट, अरु माने नहीं।
जिनदेव कहते जीव वे संसार से छूटें नहीं।।56।।

रत्न दीपक दूध-घी-दहि सूर्य पत्थर स्वर्ण-सम।
स्फटिक रजत-रु अग्निवत् निज जीव को पहचानिये।।57।।

शून्य नभवत् देह को भी भिन्न निज से जानना।
पर ब्रह्म को वह शीघ्र जाने ज्ञान-केवल प्रकटता।।58।।

शुद्ध है आकाश ज्यों त्यों जीव भी निर्मल लखो।
जड़ रूप जानो व्योम को चैतन्य लक्षण जीव को।।59।।

नासाग्र दृष्टि कर लखें अशरीर जो शुद्धात्म को।
जन्में न बारम्बार वे पीते न जननी-क्षीर को।।60।।

निज आत्म को तन रहित चेतन, देह को जड़ जानिए।
परित्याग मिथ्या मोह, तन को भी न अपना मानिए।।61।।

निज से स्वयं को जानने से प्राप्त क्या फल हो नहीं।
कैवल्य रवि का उदय हो अरु सौख्य शाश्वत हो सही।।62।।

पर-भाव तज कर जो मुनि निज से निजातम अनुभवें।
कैवल्य ज्ञान स्वरूप पाकर भवाताप विनाशते।।63।।

पर-भाव को जो त्यागते भगवंत वे ही धन्य हैं।
वे लोक और अलोक भासक शुद्ध आतम अनुभवें।।64।।

सागार या अनगार जो निज आत्मा में ही बसें।
वे शीघ्र सिद्धि-सुख लहें जिनदेव प्रभु ऐसा कहें।।65।।

तत्त्व के ज्ञायक विरल हैं तत्त्व-श्रोता भी विरल।
ध्याता विरल हैं तत्त्व के अरु तत्त्व-धारक भी विरल।।66।।

परिजन कुटुंबी मम नहीं यह मोह, सुख-दुख खान है।
यह चिन्तवन कर ज्ञानि होते शीघ्र ही भवपार हैं।।67।।

देवेन्द्र और फणीन्द्र नरपति भी शरण-दाता नहीं।
जान मुनि अशरण, स्वयं को स्वयं से वेदें सही।।68।।

अकेला जन्मे मरे सुख-दुक्ख भोगे स्वयं ही।
जाये नरक में जिय अकेला शिव लहे जिय एक ही।।69।।

रे जीव! जायेगा अकेला तो सकल परभाव तज-
ज्ञानमय निज आतमा ध्या शीघ्र ही शिव-सौख्य भज।।70।।

जो पाप है उसको सकल जग पापमय ही जानता।
पर पुण्य को भी पापमय ज्ञानी विरल ही जानता।।71।।

ज्यों लोह बेड़ी बाँधती त्यों स्वर्ण की भी बाँधती।
यह जानकर शुभ अशुभ तजना मर्म ज्ञानी का यही।।72।।

यदि हो गया निर्ग्रन्थ मन तो तभी तुम निर्ग्रन्थ हो।
यदि हो गये निर्ग्रन्थ, तुमने पा लिया शिव-पंथ को।।73।।

वट वृक्ष में ज्यों बीज रहता बीज में वट वृक्ष है।
त्यों देह में है देव जानो जो त्रिलोक प्रधान है।।74।।

जो हैं जिनेश्वर मैं वही यह जान लो निर्भ्रान्त हो।
वही मैं हूँ अनुभवो! शिव हेतु मंत्र न तंत्र हो।।75।।

दो-रूप या त्रय चार पाँच-रु सप्त नव अरु पाँच चउ।
इन गुण सहित परमातमा निर्धार उर में तुम करो।।76।।

दो छोड़, दो गुण सहित हो जो आतमा में लीन हो।
जिनवर कहें वह शीघ्र ही, निर्वाण पद को प्राप्त हो।।77।।

तीन तज कर तीन गुणयुत हो, करे निज-वास जो।
जिनवर कहें वह जीव शाश्वत-सौख्य भाजन अहो।।78।।

चार संज्ञा अरु कषाय विहीन जो गुण चारयुत।
वह आत्मा - यह जानकर हे जीव! हो जाओ पवित्र।।79।।

दश से रहित दश से सहित दश गुणों से संयुक्त जो।
जीव जानो नियत नय से यह कहें जिनवर अहो।।80।।

यह आत्म दर्शन ज्ञान है यह आतमा चारित्र है।
आत्मा तप शील संयम आत्म प्रत्याख्यान है।।81।।

निज और पर को जानकर निर्भ्रान्त हो जो पर तजे।
यह जानिए संन्यास सच्चा बात यह जिनवर कहें।।82।।

जो जीव रत्नत्रय सहित वे तीर्थ परम पवित्र हैं।
है मोक्ष-पथ कारण यही नहिं और मंत्र न तंत्र है।।83।।

यह आतमा निर्मल महान, प्रतीति यह सम्यक्त्व है।
आत्मा की भावना हो बार-बार, चरित्र है।।84।।

आत्मा में सर्व गुण यह केवली जिनवर कहें।
इसलिए योगी नियम से आत्म का अनुभव करें।।85।।

इन्द्रिय-विरत निर्ग्रन्थ हो मन-वचन-तन को शुद्ध कर।
निज आत्मा को जानकर प्राप्ति करो शिवसुख त्वरित।।86।।

बंध-मोक्ष विकल्प से भी जीव तू निश्चित बँधे।
सहज आत्मस्वरूप में यदि रमे तो शिव-सुख मिले।।87।।

जीव सम्यग्दृष्टि को दुर्गति गमन होता नहीं।
कदाचित् यदि जाये तो भी दोष नहिं, क्षय-कर्म हो।।88।।

जो सकल व्यवहार तज निजरूप में ही लीन हो।
जीव सम्यग्दृष्टि वह अति शीघ्र भवदधि पार हो।।89।।

सम्यक्त्व धारी पुरुष ही पंडित, शिरोमणि लोक में।
वे शीघ्र ही कैवल्य पाते सुखमयी शाश्वत अहो।।90।।

जो जरा-मृत्यु विहीन गुण-निधि आत्मा में लीन हो।
वे कर्म-बंधन नहिं करें पहले बँधे, हों क्षय अहो।।91।।

डूबा कमलिनी पत्र जल में किन्तु वह भीगे नहीं।
त्यों लीन आत्मस्वभाव में जो कर्म से बँधता नहीं।।92।।

साम्य सुख में लीन हो जो अनुभवे निज आत्म को।
नियम से वह कर्म क्षय कर शिव-नगर को प्राप्त हो।।93।।

हे जीव! पुरुषाकार निर्मल आत्मा को देखिए।
वह तेजमय अरु शुद्ध है गुणगण अनंत सुधाम है।।94।।

अपवित्र तन से भिन्न जो शुद्धात्मा को जानता।
सब शास्त्र का ज्ञाता वही हो लीन सुख में ही सदा।।95।।

जो स्व-पर को जानें नहीं परभाव को नहिं परित्यजें।
यदि शास्त्र सब जानें परन्तु प्राप्त नहिं शिव-सुख करें।।96।।

तजकर समस्त विकल्प होकर लीन परम-समाधि में।
वेदन करे आनन्द का शिव-सुख कहें जिनवर उसे।।97।।

पिण्डस्थ और पदस्थ जो रूपस्थ रूपातीत हैं।
बुध जानिए जिन-कथित इनको त्वरित परम पवित्र हो।।98।।

ज्ञानमय सब जीव हैं, समभाव ऐसा जो लखे।
यही सामायिक अहो यह बात श्री जिनवर कहें।।99।।

जो राग-द्वेष तजे तथा समभाव को धारण करे।
यही सामायिक अहो यह बात श्री जिनवर कहें।।100।।

हिंसादि का परित्याग करके आत्म को स्थिर करे।
चारित्र दूजा है यही जो गती-पंचम में धरे।।101।।

मिथ्यात्व आदिक त्याग कर जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि हो।
चारित्र यह परिहार-शुद्धि शीघ्र ही शिवसिद्धि हो।।102।।

सूक्ष्म लोभ तजे तथा परिणाम हों अति सूक्ष्म जो।
यह सूक्ष्म चारित जानिए जो शाश्वत सुखधाम है।।103।।

अरहन्त एवं सिद्ध भी है आत्मा आचार्य भी।
उवझाय भी है आत्मा अरु साधु निश्चय से वही।।104।।

आत्मा ही विष्णु शंकर बुद्ध शिव अरु रुद्र है।
वही ब्रह्मा ईश्वर जिन सिद्ध और अनन्त है।।105।।

इन लक्षणों से युक्त जो है देव परमात्मा अतन।
अरु देहवासी जीव में नहिं भेद किंचित् जानिए।।106।।

जिनवर कहें जो सिद्ध हैं या हो गए अरु होंयगे।
वे आत्मदर्शन से हुए, निर्भ्रान्त हो यह जानिए।।107।।

संसार से भयभीत हैं मुनिराज योगीन्दु अहो।
निज आत्मसंबोधन किया दोहा रचे एकाग्र हो।।108।।

*****